कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका

वसुधा

Year 16, Issue 64
Oct.-Dec., 2019

VASUDHA A CANADIAN PUBLICATION

EDITOR-PUBLISHER : Dr. Sneh Thakore - Awarded By The President Of India
Limka Book Record Holder

संपादन व प्रकाशन
डॉ. स्नेह ठाकुर
भारत के राष्ट्रपति द्वारा पुरस्कृत
लिम्का बुक रिकॉर्ड होल्डर

वर्ष १६ - अंक ६४, अक्टूबर - दिसम्बर २०१९

यायावर राम

पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि

एक यायावर मिला था
पशुओं के झुण्ड को टेरता
खड़ी चढ़ाई पर हिमालय की
एक यायावर बंजारा हाँफता-खाँसता
सफरता रात-भर गाडुलिया लुहार
राणाप्रताप के वंश को धौंकनी में धौंकता
पीढ़ियाँ ढोता बँधुआ बैलगाड़ी पर
और एक यायावर ठिठुरता आल्प्स की घाटी में
योरोप में ईरान, अफगानिस्तान पहाड़ों की वादी में
और जगह-जगह यायावरों के साथ पाताल पहुँचता हूँ
भारत का यायावर
समुद्रों को लाँघता यहाँ भी मिल गया
बदलता गया रात को दिन में
पर उसकी दुनिया में काली रातें थीं
एक खण्डहर बोला
उसने रोमा को जन्मा
कहीं मेरा राम तो यहाँ नहीं आया,
(ज़रुर आया होगा)
इतिहास के पृष्ठों ने प्रश्न किया
मिस्र के रामेसस भी कहीं यायावर ही तो नहीं थे?
भगवान राम की तरह
चौदह वर्ष की यायावरी में रमते राम
तुमसे बड़ा यायावर कौन रहा होगा!
(यायावर प्रकृति से ही नहीं नियति से भी होता है)
और फिर रोमा में खड़ा
नियति के नाम पर ढूँढ रहा हूँ मैं
अपने राम को, यायावर राम को.

vsuDa

sS4apk, sMpadk v p/kaxk : डॉ. Sneh #akur

(पोस्ट-डॉक्टरल फ़ेलोशिप अवार्डी)

(भारत के राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रपति भवन में "हिन्दी सेवी सम्मान" से सम्मानित)

xI8Rk	rciyta	p*#"
सम्पादकीय		२
राम की शक्ति पूजा	सूर्यकांत त्रिपाठी “निराला”	७
भीष्म को क्षमा नहीं किया गया	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी	११
तमसो मा ज्योतिर्गमय	प्रो. गिरीश्वर मिश्र	१४
किसका सत्य ही जयते	रमेश जोशी	१६
आइये दीपावली मनायें	डॉ. शशि ऋषि	१८
भारतीय भाषाएँ – एक विस्मृत विनाश	राहुल देव	१९
लकड़ी का रावण	गजानन माधव मुक्तिबोध	२१
बेबी, खाना खा लिया?	समीर लाल “समीर”	२६
बचपन	डॉ. अजय श्रीवास्तव	२८
छत का टपका और चोर	प्रो. सुरेश ऋतुपर्ण	२९
करवा चौथ	डॉ. ओम गुप्ता	३१
नेता जी का भाषण	धर्मेन्द्र कुमार	३२
मन हठीला	भावना सक्सैना	३४
राष्ट्र भाषा हिन्दुस्तानी और महात्मा गाँधी	डॉ. अमरनाथ	३५
धरती ख़ामोश थी	संजय श्रीवास्तव	४०
सुसंस्कार की कठिन डगर पर	डॉ. सीतेश अलोक	४१
यायावर राम	पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि	१अ
डॉ. स्नेह ठाकुर का रचना संसार		४४अ

rcnaAo. me iniht ivcar t4a mNtVy rcnakaro. ke injI ivcar t4a mNtVy hE. vsuDa' rcnakaro. ke ivcaro. ke il0]%rdayI nhI. hE. p/kaxk kI Aa)a ibna ko{ rcna iksI p/kar]*t nhI. kI janI caih0| p/kaixt rcnaAo. pr ko{ pair&imk nhI. idya ja0ga| rcna0>wej ne ke il0 sMpkRpta :

16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534

vai8Rk xulk Annual subscription..........$25.00, wart - =. îÈÈ.ÈÈ

Dak µara By Mail $35.00, International Mail $40.00

Website: http://www.Vasudha1.webs.com

e-mail: dr.snehthakore@gmail.com

sMpad kIy

त्योहारों की गोद में विरासत पलती है. त्योहारों से पीढ़ियों से पीढ़ियों का अंतर मिट जाता है क्योंकि एक पीढ़ी विरासत में त्योहार दूसरी पीढ़ी को देती है. सदियों से चला आ रहा अंधकार को मिटाने वाला ज्योतिर्मय पर्व “दीपावली” भारतीय क्या प्रवासी भारतीय एवं भारतवंशियों को भी पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपनी कल्याणकारी अनुभूति से सराबोर कर देता है. जहाँ एक ओर दीपोत्सव श्रीराम के अयोध्या आगमन पर मनाया गया महोत्सव का प्रतीक है, आलोक-पर्व है, वहीं शिक्षाप्रद पर्व भी. श्रीराम के उच्चतम, आदर्शमय गुणों की गुण-गाथा है. बुराई पर अच्छाई की विजय है. एक छोटा-सा प्रज्वलित दीया भी आपको महत्वपूर्ण शिक्षा प्रदान करता है. दीया यह नहीं कहता कि मैं किसी विशेष को ही प्रकाश दूँगा, सबको नहीं. उसके प्रकाश की परिधि में आने वाले सभी उसके प्रकाश से लाभान्वित होते हैं. दीपावली में तो असंख्य प्रज्वलित दीये मानव-मार्ग प्रशस्त करते हैं. प्रकाश के उस अपूर्व भंडार के एक छोटे-से दीये से भी यदि हर मानव शिक्षा ग्रहण कर ले कि 'देना' 'लेने' से बढ़कर 'आत्म-तुष्टि' का माध्यम है, तो मानव-जीवन सार्थक हो जाए. महानता इसमें नहीं कि आप क्या हैं, महानता इसमें है कि आप क्या दे रहे हैं. प्रेमपूर्ण हृदय ही सबके प्रति प्रेमपूर्ण होता है, और ऐसा प्रेम-परिपूर्ण हृदय ही विश्व से घृणा का साम्राज्य समाप्त करने में समर्थ होगा. आइये, दीपावली की मंगलकामनाओं को आगे बढ़ाते हुए नव वर्ष हेतु संकल्प लेकर हृदय से घृणा को विलीन कर उसका अस्तित्व ही समाप्त कर दें. घृणा विदा हुई तो क्रोध स्वयमेव ही हृदय से विदा हो जाएगा. जहाँ चित्त से क्रोध विदा हो जाए और जहाँ प्राण सर्वमांगल्य हेतु प्रार्थना से परिपूर्ण हों, वहाँ शैतान का अस्तित्व कैसे बचेगा? इसी परिपूर्णता की ओर अग्रसर....तमसो मा ज्योतिर्गमय....का दामन थामे नव वर्ष की ओर अग्रसित हों.

मेरे उपन्यास “लोक-नायक राम” (जिसका चतुर्थ संस्करण प्रकाशित हो चुका है) के प्रकाशनोपरांत ठाकुर साहब का विशेष आग्रह था कि मैं अब रावण संदर्भित उपन्यास लिखूँ. उन्होंने “दशानन रावण” के अकल्पनीय पाण्डित्व, शिव-भक्ति निष्ठा, अपूर्व, अपरिमेय गुण, पर साथ ही किस प्रकार उनका अहंकारजनित उपयोग उसे विनाशपथ पर ले आया – के चरित्र का चिंतन-मनन कर चित्रण करने की ओर प्रेरित किया. ठाकुर साहब मेरे लिए एवं अपने सभी परिचितों के लिए एक ऐसा व्यक्तित्व हैं जिन्होंने न केवल अपने परिवार में सुबह से रात तक हर परिस्थिति में व्यवहृत अभिवादन के लिए, वरन् इस जगत् के हर सम्बन्धों के प्रत्येक अभिवादन में प्रयोग के लिए हर समय “राम-राम जी” का उद्घोष उच्चारित किया था. ऐसे राममय व्यक्तित्व ने नीर-क्षीर विवेकी श्रीराम की महिमा के गुणगान हेतु, जो अधर्म प्रवृत्त दशानन रावण के न केवल दोषों को ही ध्यान में रख उसकी अभ्यर्थना करते हैं, वरन् उसके गुणों की महत्ता भी स्वीकार कर मानव-मात्र को नीर-क्षीर विवेकी होने का सन्देश भी देते हैं, को माध्यम बना इस पुस्तक के निर्माण का स्वप्न देखा था.

पर उस समय मन:स्थिति कुछ ऐसी बनी कि उपन्यास “श्रीरामप्रिया सीता” का सृजन आरम्भ हो गया. पर हाँ! “दशानन रावण” की परिकल्पना भी इस दौरान मन-मष्तिष्क में करवटें लेती रही और “श्रीरामप्रिया सीता” के उपरांत “दशानन रावण” का सृजन आरम्भ हो गया. यद्यपि की ठाकुर साहब के जीवनकाल में यह उपन्यास “दशानन रावण” प्रकाशनाधीन था तथापि नियति की विडम्बना कि प्रकाशित कृति उनके हाथों में थमाने का उल्लसित उल्लास मेरी नियति में न था. भारी मन से अब परमेश्वर के चरण-कमलों में समर्पित पति और पति के चरण-कमलों में समर्पित यह कृति “दशानन रावण” पाठकों के कर-कमलों में अवलोकनार्थ सस्नेह अर्पित करने का अवसर प्राप्त हुआ है. यदि यह पुस्तक पाठकों के मन को छूती है तो इसका सम्पूर्ण श्रेय ठाकुर साहब को जाता है, मैं केवल निमित्त मात्र हूँ.

ठाकुर साहब के कठिन परिश्रम व आर्थिक सहयोग से ही वसुधा के त्रैमासिक अंक आप सब तक पहुँचते रहे तथापि वे स्वयं कभी भी इसका श्रेय लेने के पक्ष में नहीं थे वरन् सदैव ही उन्होंने पृष्ठभूमि में रह, पृष्ठाधार

बन, नि:स्वार्थ भाव से हिन्दी के प्रचार-प्रसार, उन्नयन में महत्वपूर्ण योगदान देकर एक अहम् भूमिका निभाई. वे एक ऐसा व्यक्तित्त्व थे जिसने मेरे व्यक्तित्व को निखारा है. एक ऐसा व्यक्तित्त्व जिसने मुझे असम्भावनाओं में सम्भावनाएँ दिखायी हैं. एक ऐसा व्यक्तित्त्व जिसने बड़ी से बड़ी बुराई में कुछ अच्छाई दिखाने का प्रयास किया है. एक ऐसा व्यक्तित्त्व जो हर हाल में मेरी रीढ़ की हड्डी बन, हर अच्छे-बुरे क्षण में मुझे सुकर्म पथ पर अग्रसर होने का परामर्श देता रहा. इसी महान् व्यक्तित्व के धनी, पति श्री सत्य पाल ठाकुर गत वर्ष २७ दिसम्बर को महा-प्रयाण की यात्रा पर निकल पड़े थे तथापि उनके कर्म, विचार, विश्वास और संकल्प आशीर्वाद रूप में सदैव साथ हैं, और रहेंगे. उनके अस्तित्व में मेरा अस्तित्व समाया हुआ था और अब उनका अस्तित्व मेरे हृदय में समाया हुआ है – ऐसे ठाकुर साहब की पुण्यात्मा को, इस विश्वास के साथ कि वह आशीर्वाद-स्वरूप निरन्तर अंतर्मन में निवास करते हुये, ज्योतिर्स्वरूप आत्मा में बसे, अवश्यमेव सदा-सर्वदा मार्गदर्शन करते रहेंगे क्योंकि अवश्य ही किसी दैवीय शक्ति ने उनके अंत:करण में पैठ, जाने से कुछ हफ्ते पहले वसुधा से संदर्भित वार्तालाप के दौरान उनके मुख से कहलवाया – "न, न, वसुधा और अपना लिखना-पढ़ना कभी भी बंद मत करना." वसुधा के निर्माता, आधार-स्तम्भ, कर्णधार, संस्थापक, आजन्म संरक्षक और अब प्रेरणा-स्त्रोत ठाकुर साहब की पुण्य-स्मृति को श्रद्धांजलि-स्वरूप सादर, सस्नेह समर्पित

भावुक क्षणों में अनायास ही व्यथित अन्तर्मन को उद्वेलित करती निम्नांकित पंक्तियाँ उमड़-घुमड़ कोरे काग़ज़ों पर अभिव्यक्ति अंकित करती रहीं जो आप सबसे साझा कर रही हूँ -

कैसा अंतर्द्वन्द्व !

तुम्हारे होने न होने का एहसास
दो विपरीत दिशाओं में खींच मन
खेलता है कशमकश का खेल.

तुम तो,
मुझमें समाये हो
यह शाश्वत् सत्य
बड़ी शांति देता है
शक्ति प्रदान करता है
कुछ भी कर बैठने का
साहस प्रदान करता है
रह गये थे जो अधूरे सुकर्म
समय के आभाव में
उन्हें पूरा करने की
प्रेरणा देता है.

पर दूसरे ही क्षण
तुम्हारा शारीरिक अभाव
निचोड़ लेता है
साहस की वह हर बूँद
जो समा गई थी
कुछ क्षण पहले ही
कर्म-बंधन के बंधन में
जब स्वप्न छोड़

खुली आँखों न देखा
तुम्हारा भौतिक तन.

हाहाकार कर उठा जीवन
कैसे बैठाऊँ दोनों में सामंजस्य!
यथार्थ में जीना है
पर स्वप्न भी तो उसमें उतारना है!
तुम्हारा और मेरा
खुली आँखों देखा गया स्वप्न
दो शरीर, चार नेत्रों द्वारा
देखा गया स्वप्न.

बसाना है मुझे अपने हृदय में
तुम्हारे हृदय की भावनाओं को
तुम्हारे भौतिक नेत्रों से
देखे गये उन स्वप्नों को
जो मैंने और तुमने जगी आँखों देखे थे
अब तुम्हारी बंद आँखों के हर भाव को
जाग्रत करना है मुझे अपने हृदय में
तुम्हारी मौन हुई वाणी के पीछे
छिपी मूक वाणी को
कर मुखागार, है प्रेषित करना
स्वयं की वाणी से.

हाँ!
जूझता है मेरा मन
पल-पल इस द्वंद्व में
कि,
तुम नहीं हो मेरे पास
हर क्षण देखती हूँ तुम्हारी कुर्सी,
तुम्हारे हर आवास को
और हो जाती हूँ निराश
कि तुम वहाँ नहीं हो;
चीत्कार कर उठता है मन
और बहने लगती है अश्रुधार
बह जाते हैं सब स्वप्न
ढह जाती है साहस की दीवार
और जब,
क्रंदन की बाढ़ में
कूल-कगारों को तोड़ता
डूबने लगता है
आस का एकल पक्षी

तुम हृदय की गहराईयों से उठ
पकड़ लेते हो उसका हाथ
और धीरे-धीरे,
उसके पंखों को सहलाते विश्वास के साथ
खींच लेते हो
मन की अतल गहराईयों में;
प्रेम की अनत, अनगिनत फुहारों से
थपक-थपक,
देने लगते हो सांत्वना
और तब,
गूँज उठती है
तुम्हारी धीर-गम्भीर वाणी
हर ज़ख्म पर
शीतल लेप लगाती सी-
"हूँ यहीं तुम्हारे पास
और,
रहूँगा सदा ही-
वचन दिया था न
सात जन्म निभाने का,
हर जन्म को
पहला मानना तुम
तभी तो बदलेगी
अनंत की
हमारी-तुम्हारी यात्रा
और छूटेगा,
तुम्हारा यह आक्रोशित क्रंदन
जो तुम्हें,
निराशा के गर्त में डुबा
मुझसे दूर, बहुत दूर ले जाता है
जब कि मैं,
यहीं....यहीं....यहीं हूँ....
हर पल, हर क्षण
तुम्हारे ही हृदय में."

"मत देखो,
मेरी कुर्सी और मेरे आवास
झाँको अपने अन्दर
और,
पाकर वहाँ सदैव ही मुझे

तुम पाओगी,
मेरी कुर्सी और मेरे आवास में भी सदा मुझे;
पकड़ कर,
मेरी उस अंतरात्मा का हाथ
बढ़ी चलो
करने उन सपनों को साकार
जो देखे थे,
तुमने और मैंने खुली आँख
मानवता के हित में
छोटे या बड़े,
करने हैं
हर काम अपनी सामर्थ्य भर
चार खुली आँखों के स्वप्नों को
पूरा करना है तुम्हें
न केवल अपनी दो खुली आँखों से
वरन्,
जोड़नी है उस दृष्टि में तुम्हें
अपनी और मेरी अंतरात्मा की निर्मल दृष्टि
जो,
करेगी मेरे शारीरिक आभाव की पूर्ति
और तब,
विश्वास के पंख पर बैठ
तुम पहचानोगी कि,
मैं हूँ सदा ही तुम्हारे साथ
करने,
दोनों के सपने साकार."

"छोड़,
अंतर्द्वन्द्व का भ्रमजाल
पकड़,
कर्मठता की डोर
बढती रहो कदम-दर-कदम
इस विश्वास के साथ
कि,
मिलाता हुआ तुम्हारे कदम से कदम
हूँ हर पग तुम्हारे साथ."

"बढ़ती रहो, बढ़ती रहो
अनंत की ओर
जब तक न हो जाएँ हम
पुन: दो शरीर और एक जान
चलने कदम-दर-कदम साथ-साथ."

स्नेह ठाकुर

राम की शक्ति पूजा

सूर्यकांत त्रिपाठी “निराला”

है अमानिशा, उगलता गगन घन अन्धकार
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन-चार
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल
भूधर ज्यों ध्यानमग्न, केवल जलती मशाल।

स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर-फिर संशय
रह-रह उठता जग जीवन में रावण-जय-भय
जो नहीं हुआ आज तक हृदय रिपु-दम्य-श्रान्त
एक भी, अयुत-लक्ष में रहा जो दुराक्रान्त
कल लड़ने को हो रहा विकल वह बार-बार
असमर्थ मानता मन उद्यत हो हार-हार।

ऐसे क्षण अन्धकार घन में जैसे विद्युत
जागी पृथ्वी तनया कुमारिका छवि अच्युत
देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन
विदेह का, प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन
नयनों का-नयनों से गोपन-प्रिय सम्भाषण
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान-पतन
काँपते हुए किसलय, झरते पराग-समुदय
गाते खग-नव-जीवन-परिचय-तरू मलय-वलय
ज्योतिःप्रपात स्वर्गीय,-ज्ञात छवि प्रथम स्वीय
जानकी-नयन-कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय।

सिहरा तन, क्षण-भर भूला मन, लहरा समस्त
हर धनुर्भंग को पुनर्वार ज्यों उठा हस्त
फूटी स्मिति सीता ध्यान-लीन राम के अधर
फिर विश्व-विजय-भावना हृदय में आयी भर
वे आये याद दिव्य शर अगणित मन्त्रपूत
फड़का पर नभ को उड़े सकल ज्यों देवदूत
देखते राम, जल रहे शलभ ज्यों रजनीचर
ताड़का, सुबाहु, बिराध, शिरस्त्रय, दूषण, खर
फिर देखी भीम मूर्ति आज रण देखी जो
आच्छादित किये हुए सम्मुख समग्र नभ को
ज्योतिर्मय अस्त्र सकल बुझ बुझ कर हुए क्षीण

पा महानिलय उस तन में क्षण में हुए लीन
लख शंकाकुल हो गये अतुल बल शेष शयन
खिंच गये दृगों में सीता के राममय नयन
फिर सुना हँस रहा अट्टहास रावण खलखल
भावित नयनों से सजल गिरे दो मुक्तादल।

बैठे मारुति देखते राम-चरणारविन्द-
युग अस्ति-नास्ति के एक रूप, गुण-गण-अनिन्द्य;
साधना-मध्य भी साम्य-वाम-कर दक्षिणपद,
दक्षिण-कर-तल पर वाम चरण, कपिवर गद्-गद्
पा सत्य सच्चिदानन्द रूप, विश्राम धाम,
जपते सभक्ति अजपा विभक्त हो राम नाम।

युग चरणों पर आ पड़े अस्तु वे अश्रु युगल
देखा कपि ने, चमके नभ में ज्यों तारादल
ये नहीं चरण राम के, बने श्यामा के शुभ-
सोहते मध्य में हीरक युग या दो कौस्तुभ;
टूटा वह तार ध्यान का, स्थिर मन हुआ विकल
सन्दिग्ध भाव की उठी दृष्टि, देखा अविकल
बैठे वे वहीं कमल-लोचन, पर सजल नयन,
व्याकुल-व्याकुल कुछ चिर-प्रफुल्ल मुख निश्चेतन।
निशि हुई विगतः नभ के ललाट पर प्रथम किरण
फूटी रघुनन्दन के दृग महिमा ज्योति हिरण।

हैं नहीं शरासन आज हस्त तूणीर स्कन्ध
वह नहीं सोहता निविड़-जटा-दृढ़-मुकुट-बन्ध
सुन पड़ता सिंहनाद,-रण कोलाहल अपार
उमड़ता नहीं मन, स्तब्ध सुधी हैं ध्यान धार
पूजोपरान्त जपते दुर्गा, दशभुजा नाम
मन करते हुए मनन नामों के गुणग्राम
बीता वह दिवस, हुआ मन स्थिर इष्ट के चरण
गहन-से-गहनतर होने लगा समाराधन।

क्रम-क्रम से हुए पार राघव के पंच दिवस
चक्र से चक्र मन बढ़ता गया ऊर्ध्व निरलस
कर-जप पूरा कर एक चढाते इन्दीवर
निज पुरश्चरण इस भाँति रहे हैं पूरा कर।

चढ़ षष्ठ दिवस आज्ञा पर हुआ समाहित-मन
प्रतिजप से खिंच-खिंच होने लगा महाकर्षण
संचित त्रिकुटी पर ध्यान द्विदल देवी-पद पर
जप के स्वर लगा काँपने थर-थर-थर अम्बर।

दो दिन निःस्पन्द एक आसन पर रहे राम,
अर्पित करते इन्दीवर जपते हुए नाम।

आठवाँ दिवस मन ध्यान-युक्त चढ़ता ऊपर
कर गया अतिक्रम ब्रह्मा-हरि-शंकर का स्तर
हो गया विजित ब्रह्माण्ड पूर्ण, देवता स्तब्ध
हो गये दग्ध जीवन के तप के समारब्ध
रह गया एक इन्दीवर, मन देखता पार
प्रायः करने हुआ दुर्ग जो सहस्रार
द्विप्रहर, रात्रि, साकार हुई दुर्गा छिपकर
हँस उठा ले गई पूजा का प्रिय इन्दीवर।
यह अन्तिम जप, ध्यान में देखते चरण युगल
राम ने बढ़ाया कर लेने को नीलकमल।
कुछ लगा न हाथ, हुआ सहसा स्थिर मन चंचल
ध्यान की भूमि से उतरे, खोले पलक विमल।
देखा, वह रिक्त स्थान, यह जप का पूर्ण समय
आसन छोड़ना असिद्धि, भर गये नयनद्वय
द्वधिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध
जानकी! हाय उद्धार प्रिया का हो न सका
वह एक और मन रहा राम का जो न थका
जो नहीं जानता दैन्य, नहीं जानता विनय
कर गया भेद वह मायावरण प्राप्त कर जय
बुद्धि के दुर्ग पहुँचा विद्युतगति हतचेतन
राम में जगी स्मृति हुए सजग पा भाव प्रमन।
यह है उपाय, कह उठे राम ज्यों मन्द्रित घन-
कहती थीं माता मुझे सदा राजीवनयन।
दो नील कमल हैं शेष अभी, यह पुरश्चरण
पूरा करता हूँ देकर मातः एक नयन।
कहकर देखा तूणीर ब्रह्मशर रहा झलक
ले लिया हस्त, लक-लक करता वह महाफलक।
ले अस्त्र वाम पर, दक्षिण कर दक्षिण लोचन
ले अर्पित करने को उद्यत हो गये सुमन

जिस क्षण बँध गया बेधने को दृग दृढ़ निश्चय
काँपा ब्रह्माण्ड, हुआ देवी का त्वरित उदय-
साधु, साधु, साधक धीर, धर्म-धन धन्य राम!
कह, लिया भगवती ने राघव का हस्त थाम।
देखा राम ने, सामने श्री दुर्गा, भास्वर
वामपद असुर-स्कन्ध पर, रहा दक्षिण हरि पर।
ज्योतिर्मय रूप, हस्त दश विविध अस्त्र सज्जित
मन्द स्मित मुख, लख हुई विश्व की श्री लज्जित।
हैं दक्षिण में लक्ष्मी, सरस्वती वाम भाग
दक्षिण गणेश, कार्तिक बायें रणरंग राग
मस्तक पर शंकर! पदपद्मों पर श्रद्धाभर
श्री राघव हुए प्रणत मन्द स्वर वन्दन कर।
होगी जय, होगी जय, हे पुरूषोत्तम नवीन।।
कह महाशक्ति राम के वदन में हुई लीन।

भीष्म को क्षमा नहीं किया गया

आचार्य हजारी प्रासाद द्विवेदी

मेरे एक मित्र हैं, बड़े विद्वान, स्पष्टवादी और नीतिमान। वह इस राज्य के बहुत प्रतिष्ठित नागरिक हैं। उनसे मिलने से सदा नई स्फूर्ति मिलती है। यद्यपि वह अवस्था में मुझसे छोटे हैं, तथापि मुझे सदा सम्मान देते हैं। इस देश में यह एक अच्छी बात है कि सब प्रकार से हीन होकर भी यदि कोई उम्र में बड़ा हो, तो थोड़ा-सा आदर पा ही जाता है। मैं भी पा जाता हूँ। मेरे इस मित्र की शिकायत थी कि देश की दुर्दशा देखते हुए भी मैं कुछ कह नहीं रहा हूँ, अर्थात इस दुर्दशा के लिए जो लोग जिम्मेदार हैं उनकी भर्त्सना नहीं कर रहा हूँ। यह एक भयंकर अपराध है। कौरवों की सभा में भीष्म ने द्रौपदी का भयंकर अपमान देखकर भी जिस प्रकार मौन धारण किया था, वैसे ही कुछ मैं और मेरे जैसे कुछ अन्य साहित्यकार चुप्पी साधे हैं। भविष्य इसे उसी तरह क्षमा नहीं करेगा जिस प्रकार भीष्म पितामह को क्षमा नहीं किया गया। मैं थोड़ी देर तक अभिभूत होकर सुनता रहा और मन में पापबोध का भी अहसास हुआ। सोचता रहा, कुछ करना चाहिए, नहीं तो भविष्य क्षमा नहीं करेगा। वर्तमान ही कौन क्षमा कर रहा है? काफी देर तक मैं परेशान रहा - चुप रहना ठीक नहीं है, क़म्बख्त भविष्य कभी माफ़ नहीं करेगा। उसकी सीमा भी तो कोई नहीं है। पाँच हजार वर्ष बीत गए और अब तक विचारे भीष्म पितामह को क्षमा नहीं किया गया। भविष्य विकट असहिष्णु है।

काफी देर बाद भ्रम दूर हुआ। मैं भीष्म नहीं हूँ। अगर हिंदी में लिखनेवाला कोई भीष्म हो जाता हो, तो भी मुझे कौन पूछता है? बहुत ज्ञानी गुणी भरे पड़े हैं। मुझसे अवस्था में, ज्ञान में, प्रतिभा में बहुत आगे। मुझे कोई डर नहीं है। "भविष्य" नामक महादुरंत अज्ञात मुझे किसी गिनती में लेनेवाला नहीं है। डरना हो तो वे ही लोग डरें, जिनकी गिनती हो सकती है। तुम क्यों घबराते हो, मनसाराम, तुम तो न तीन में, न तेरह में। बड़ी राहत मिली इस यथार्थबोध से।

अगाध इतिहासबोध : मगर यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि थोड़ा देर के लिए ही सही, भीष्म मुझ पर छाये रहे। प्राचीनकाल में भीष्म जैसा धर्मज्ञ और ज्ञानी खोजना कठिन है। महाभारत का शांतिपर्व इसका गवाह है। कोई समस्या तो भले आदमी ने छोड़ी नहीं। प्राचीन काल के ज्ञानियों में भीष्म मुझे सबसे अधिक प्रभावित करते हैं, अपने अगाध इतिहासबोध के कारण। युधिष्ठिर के हर प्रश्न के उत्तर में वह प्रायः यह कहकर शुरू करते हैं - "अत्राप्युदा हरन्तीमितिहासं पुरातनम"। (यहाँ भी लोग इस पुराने इतिहास की नज़ीर देते हैं।) किस प्रकार पुराने इतिहास से वह वर्तमान समस्या के सही स्वरूप का उद्घाटन करते हैं और उसका विकासक्रम समझा देते हैं, वह चकित कर देता है। हर प्रश्न के तह में जाने की उनकी पद्धति आधुनिक युग में भी उपयोगी है। ज्ञान और धर्म के सच्चे रूप को पहचानने में उन्हें कमाल की सफलता मिली थी। यह कहना गलत होगा कि भीष्म के प्रति भारतवर्ष ने कृतज्ञता नहीं दिखाई। आज भी श्रद्धावान लोग भीष्माष्टमी को अपनी श्रद्धा उनके प्रति निवेदन करते ही हैं, परंतु जिस समय मेरे मित्र अत्यंत प्रभावशाली शैली में भीष्म को मेरे ऊपर आरोपित कर रहे थे, उस समय थोड़ी देर के लिए भीष्म का आवेश सचमुच मेरे ऊपर आ गया था। प्रभावशाली भाषा में जादुई शक्ति होती है। उसी से कवि पाठक को अभिभूत करता है, वक्ता उसी के बल पर श्रोता पर छा जाता है। मैं भी कुछ आविष्ट हुआ। भीष्म की ही शैली में बोलने की प्रेरणा जाग्रत हुई थी... अत्राप्युदाहरन्तीमितिहासं पुरातनम। एक पुराना इतिहास मुझे भी स्मरण ही आया था।

वह इतिहास यह है। बात सन् ३५-३६ की है। उन दिनों मैं शांतिनिकेतन में था। एक दिन प्रातः भ्रमण के लिए निकला था। मैं साधारणतः प्रातः भ्रमण के लिए तभी निकलता हूँ, जब किसी ऐसे उत्साही घुमक्कड़ से,

जो श्रद्धेय कोटि के होते हैं, प्रेरणा मिलती है। उन दिनों श्रद्धेय आचार्य क्षितिमोहन सेन की प्रेरणा से प्रातः भ्रमण के लिए निकलता था। सही बात तो यह है कि निकलते वह थे, मैं पीछे हो लेता था। तो उस दिन भी मैं उनके साथ ही निकला। भाग्य उस दिन प्रसन्न था। देखा, गुरुदेव धीरे-धीरे अपने बगीचे में टहल रहे थे। कुछ गम्भीर मुद्रा में थे। आचार्य सेन ने कहा, "चलो प्रणाम कर लें"। वह आगे चले, मैं पीछे पीछे। धीरे-धीरे दबे पाँव हम लोग उनके पास पहुँच गए। चरण छूकर प्रणाम निवेदन किया। उनका ध्यान भंग हुआ। देखकर प्रसन्न हुए। उन्होंने उस दिन मुझे सम्बोधित करके कहा - तुमने कभी सोचा है कि भीष्म को अवतार क्यों नहीं माना गया और श्रीकृष्ण को ही क्यों अवतार रूप में सम्मान दिया गया?

मैंने कभी ऐसा सोचा ही नहीं था। क्या जवाब देता? मैं मन ही मन अपने सोचने की शक्ति की दरिद्रता पर लज्जित हो रहा था। आचार्य सेन ने रक्षा की। गुरुदेव ने हँसते हुए कहा "आपने तो कुछ सोचा ही होगा। मगर मैं इस पंडित को ही छेड़ना चाहता था। अभी नौजवान है, नया खून है, मार खाने की अभी शक्ति है, मेरी पीठ तो जर्जर हो चुकी है।" कहकर गुरुदेव खूब प्रसन्न भाव से हँसे। मैंने विनीत भाव से कहा - "ऐसा प्रश्न तो मेरे मन में कभी उठा ही नहीं, परंतु आप कहते हैं तो सोचूँगा। परंतु क्या सोचूँ, यह बता दें। गुरुदेव के शब्द याद नहीं हैं, पर उनके कथन की मेरे मन पर जो छाप रह गई है, वह यह है कि शर-शय्या पर पड़े भीष्म ने जब भयंकर नरसंहार देखा होगा, उनके जैसे ज्ञानी के मन में अपनी प्रतिज्ञा, उसके परवर्ती परिणाम आदि बातें क्या उठी नहीं होंगी? मैंने सोचना शुरू किया था। कई प्रतिभाशाली मित्रों से भी सोचने को कहा था, पर सोचता ही रह गया। जिन्होंने सोचने के लिए उकसाया था, वह चले गए। आज मेरे मित्र ने कहा कि भीष्म को क्षमा नहीं किया गया तो बात फिर उमड़कर नए रूप में मानसपटल पर हहरा उठी। लहराई तो क्या होगी।

भीष्म शर-शय्या पर सोए उपयुक्त काल की प्रतीक्षा कर रहे थे - मरने के लिए। जैसे-तैसे, जब-तब, जहाँ-तहाँ मरना भी ठीक नहीं होता। उचित मुहूर्त में मरना चाहिए। साधारण मनुष्य मुहूर्त का विचार किए बिना ही मर जाते हैं। भीष्म ऐसे नहीं थे। उन्हें इच्छा मृत्यु का वरदान प्राप्त था। जब तक उत्तम मुहूर्त न आ जाए तब तक वह मृत्यु नहीं चाहते थे। इसका फायदा उठाया युधिष्ठिर ने। सारी शंकाएँ उनसे कह डालीं और उत्तर भी वसूल कर लिए। मेरे एक आदि गुरु ने शर-शय्यावाली कहानी सुनाई थी। उनके कहने का मतलब था कि भीष्म पितामह अनेक बाणों की नोंक पर सोए हुए थे। उनका तकिया भी बाणों की नोंक का ही बना था। मेरा बालक मन बहुत व्याकुल हो गया था। वह हजार ब्रह्मचारी रहे हों, उन्हें बाणों की नोक तो चुभती ही होगी। बिचारे वृद्ध करवट भी नहीं बदल पाते होंगे। जब बदलते होंगे तब बाण बुरी तरह चुभ जाते होंगे। और उसी में युधिष्ठिर प्रश्नों की बौछार कर रहे होंगे।

यद्यपि वह (युधिष्ठिर) तो दयालु थे, तथापि उस समय थोड़ी और दया दिखाते, तो क्या बिगड़ जाता? मैं जब उस दृश्य की कल्पना करता था, तब मुझे बड़ी पीड़ा होती थी, पर दूसरे बच्चे ब्रह्मचर्य की महिमा का अनुभव करते थे और प्रसन्न होते थे। उनकी दृष्टि में ब्रह्मचारी के लिए यह कोई कष्ट की बात ही नहीं थी। मैं भी उसकी महिमा तो समझता था, पर न जाने क्यों मेरा मन दुखी हो उठता था। बाद में मेरे एक विद्वान बुजुर्ग ने बताया कि "शर" सरकंडे को कहते थे। उसी से बाण बनते थे, इसलिए "शर" का अर्थ बाण हो गया। भीष्म वस्तुतः बाणों की नोक पर नहीं, सरकंडों की चटाई पर लेटे थे। वह व्याख्या ठीक है या नहीं, पर मेरे बालक मन को इससे बड़ी राहत मिली थी। सो, भीष्म शर-शय्या पर थे अर्थात सरकंडों की चटाई पर लेटे हुए थे। वैसे, जर्जर वृद्ध के लिए यह भी कम कठोर शैय्या नहीं थी, पर चुभनेवाली नहीं होगी। समर्थ पौत्रों ने उसे कुछ तो तरीके से बनवाया ही होगा। युधिष्ठिर ने अच्छा ही किया जो उनका मन बातचीत में उलझाए रखा, परंतु जब युधिष्ठिर और अन्य लोग उन्हें विश्राम करने के लिए छोड़कर चले जाते होंगे, तब एकांत में इस बूढ़े के मन में क्या चिंता रहती होगी? कुछ तो सोचते ही होंगे। श्रद्धालु लोग तो कहेंगे कि वह तुरंत ब्राह्मी स्थिति में चले जाते

होंगे। भगवान श्रीकृष्ण ने तो कहा ही है कि ब्राह्मी स्थिति प्राप्त हो जाने पर कोई मोह होता ही नहीं। पर जिन्हें श्रद्धा का इतना सम्बल प्राप्त नहीं है, वे क्या करें? उन्हें लगता है कि भीष्म जैसा ज्ञानी भी कुछ सोचता जरूर होगा।

दोनों बातों का अर्थ : गुरुदेव पूछते हैं कि भीष्म को अवतार क्यों नहीं माना गया, मेरे यह मित्र कहते हैं कि भीष्म को क्षमा नहीं किया गया। क्या दोनों बातों का अर्थ एक ही है? शायद भीष्म को क्षमा नहीं किया गया, इसीलिए उन्हें अवतार नहीं माना गया। कुछ बात है अवश्य। भारतवर्ष किसी बात पर मौन भी रह जाता है, तो उसका कुछ अर्थ होता है। किसी ने नहीं कहा कि भीष्म को अमुक-अमुक कारणों से अवतार नहीं माना गया और श्रीकृष्ण को अमुक-अमुक कारणों से अवतार माना गया। एक को विष्णु का अवतार नहीं कहा गया, क्योंकि वह नहीं थे, एक को मान लिया गया क्योंकि वस्तुतः थे। हमारे मनीषियों ने इसी ढंग से सोचा है।

दिनकरजी महामना और उदार कवि थे। उनसे क्षमा मिल जाने की आशा से इतना तो कहा ही जा सकता है कि भीष्म अपने बम-भोलानाथ गुरु परशुराम से अधिक संतुलित, विचारवान और ज्ञानी थे। पुराने रिकार्ड कुछ ऐसा सोचने को मजबूर करते हैं। फिर भी परशुराम को दस अवतारों में गिन लिया गया और बिचारे भीष्म को ऐसा कोई गौरव नहीं दिया गया। क्या कारण हो सकता है?

एकांत में भीष्म सरकंडों की चटाई पर लेटे-लेटे क्या अपने बारे में सोचते नहीं होंगे? मेरा मन कहता है कि जरूर सोचते होंगे। भीष्म ने कभी बचपन में पिता की गलत आकांक्षाओं की तृप्ति के लिए भीषण प्रतिज्ञा की थी - वह आजीवन विवाह नहीं करेंगे। अर्थात् इस सम्भावना को ही नष्ट कर देंगे कि उनके पुत्र होगा और वह या उसकी संतान कुरुवंश के सिंहासन पर दावा करेगी। प्रतिज्ञा सचमुच भीषण थी। कहते हैं कि इस भीषण प्रतिज्ञा के कारण ही वह देवदत्त से "भीष्म" बने। यद्यपि चित्रवीर्य और विचित्रवीर्य तक तो कौरव रक्त रह गया था। तथापि बाद में वास्तविक कौरव रक्त समाप्त हो गया, केवल कानूनी कौरव वंश चलता रहा। जीवन के अंतिम दिनों में इतिहास मर्मज्ञ भीष्म को यह बात क्या खली नहीं होगी?

भीष्म को अगर यह बात नहीं खली तो और भी बुरा हुआ। परशुराम चाहे ज्ञान-विज्ञान की जानकारी का बोझ ढोने में भीष्म के समकक्ष न रहे हों, पर सीधी बात को सीधे समझने में निश्चय ही वह उनसे बहुत आगे थे। वह भी ब्रह्मचारी थे - बालब्रह्मचारी। पर भीष्म जब अपने निर्वीर्य भाइयों के लिए कन्याहरण कर लाए और एक कन्या को अविवाहित रहने को बाध्य किया, तब उन्होंने भीष्म के इस अशोभन कार्य को क्षमा नहीं किया। समझाने बुझाने तक ही नहीं रुके, लड़ाई भी की। पर भीष्म अपनी प्रतिज्ञा के शब्दों से चिपटे ही रहे। वह भविष्य नहीं देख सके, वह लोककल्याण को नहीं समझ सके। फलतः अपहृता अपमानित कन्या जल मरी।

नारदजी भी ब्रह्मचारी थे। उन्होंने सत्य के बारे में शब्दों पर चिपटने को नहीं, सबके हित या कल्याण को अधिक जरूरी समझा था - सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि हितं वदेत्।

भीष्म ने दूसरे पक्ष की उपेक्षा की थी। वह "सत्यस्य वचनम्" को "हित" से अधिक महत्व दे गए। श्रीकृष्ण ने ठीक इससे उलटा आचरण किया। प्रतिज्ञा में "सत्यम वचनम्" की अपेक्षा "हितम्" को अधिक महत्व दिया। क्या भारतीय सामूहिक चित्त ने भी उन्हें पूर्वावतार मानकर इसी पक्ष को अपना मौन समर्थन दिया है? एक बार गलत-सही जो कह दिया, उसी से चिपट जाना "भीषण" हो सकता है, हितकर नहीं। भीष्म ने "भीषण" को ही चुना था।

भीष्म और द्रोण भी, द्रोपदी का अपमान देखकर भी क्यों चुप रह गए? द्रोण गरीब अध्यापक थे, बाल बच्चेवाले थे। गरीब ऐसे कि गाय भी नहीं पाल सकते थे। विचारी ब्राह्मणी को चावल का पानी देकर दूध माँगनेवाले बच्चे को फुसलाना पड़ा था। उसी अवस्था में फिर लौट जाने का साहस कम लोगों में होता है, पर भीष्म तो पितामह थे। उन्हें बाल-बच्चे की फिक्र भी नहीं थी, भीष्म को क्या परवा थी। एक कल्पना यह की जा

सकती है कि महाभारत की कहानी जिस रूप में प्राप्त है, वह उसका बाद का परिवर्तित रूप है। शायद पूरी कहानी जैसी थी, वैसी नहीं मिली है। लेकिन आजकल के लोगों को आप जो चाहे कह लें, पुराने इतिहासकार इतना गिरे हुए नहीं होंगे कि पूरा इतिहास ही उलट दें। सो, इस कल्पना से भी भीष्म की चुप्पी समझ में नहीं आती। इतना सच जान पड़ता है कि भीष्म में कर्तव्य-अकर्तव्य के निर्णय में कहीं कोई कमजोरी थी। वह उचित अवसर पर उचित निर्णय नहीं ले पाते थे। यद्यपि वह जानते बहुत थे, तथापि कुछ निर्णय नहीं ले पाते थे। उन्हें अवतार न मानना ठीक ही हुआ। आजकल भी ऐसे विद्वान मिल जाएँगे, जो जानते बहुत हैं, करते कुछ भी नहीं। करने वाला इतिहास निर्माता होता है, सिर्फ सोचते रहने वाला इतिहास के भयंकर रथचक्र के नीचे पिस जाता है। इतिहास का रथ वह हाँकता है, जो सोचता है और सोचे को करता भी है।

तमसो मा ज्योतिर्गमय

प्रो. गिरीश्वर मिश्र

(पूर्व कुलपति महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय)

हो रहे सब दृष्टि-दूषित,
ज्ञान स्मृति से हीन.
गन्तव्य दुर्गम दीर्घ,
यात्रा-पथ दिशाहीन.
प्रज्ञा -अवकाश बीच
अंतस के गहन कलुष
लेते प्रश्वास श्वास.
होकर उद्दीप्त करें
अनर्गल प्रलाप
शुष्क!
सीमित!
रसहीन!
गति-विरहित –
चंचल-चित्!
बनते हैं कर्महीन.

२

प्राप्त प्रखर ताप,
हुआ अहं
भोगलिप्त
एषणा अति वित्त की,
करती रहे
केवल अतृप्त.
विगलित हो नष्ट हुई,

लज्जा संवृत.
होता विवेक, भ्रष्ट !
कल्मष-आवृत्त.

सत्ता-सुख-सुरभित-मन
हुआ आत्मलीन!
सृष्टि कहे :
जियो
उद्योगमय!
सहयोगमय!
औदार्यमय जीवन!
आओ करें मिल
त्याग-सेवा-पूर्ण
शुभ संकल्प का
सुन्दर प्रवर्तन.
अमृतमय सहकार ही
सम्भव करेगा
चिर प्रतीक्षित और वांछित
प्रकृति संस्कृति मध्य संतुलन.

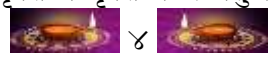

आओ!
चलें करें सृजन.
हो विहान
नव युग का.
आहुति दें लोक याग में
बुद्धि,
श्रम,
शरीर
की समिधा संग
रचें शोषणमुक्त दुनिया.
लोक से आलोक ले
हो, सहिष्णु-सुशील.
शिव का निमित्त बन कर
अंतर्मन द्योतित हो
ज्योतित हो बाह्य जगत.
गूँजें जयगान :
तमसो मा ज्योतिर्गमय.

किसका सत्य ही जयते

रमेश जोशी

आज बात एक किस्से, एक लोककथा से शुरू करना चाहता हूँ : एक राजा था। उसके सिर पर सींग थे जिन्हें वह अपने बालों, ताज और मुकुट से पीछे छुपाए रहता था। लेकिन जिन पंथों में शरीर का एक भी बाल काटने, कटाने, तोड़ने और रंगने को धर्म-विरुद्ध माना जाता है उनके अनुयायी भी थोड़ी देर के लिए सर्वव्यापी से आँख बचाकर बालों से छेड़छाड़ का यह पाप (!) कर लेते हैं तो उस राजा का तो ऐसा कोई पन्थ भी नहीं था। एक बार केश-विन्यास के लिए उसे एक नाई को बुलाना पड़ गया।

हजामत के दौरान राजा का भेद तो खुलना ही था। राजा का आदेश था कि वह इसकी चर्चा किसी से भी न करे अन्यथा बड़ी सरलता से राजद्रोह का मामला बन सकता था। राजद्रोह तो अच्छे-अच्छों की हवा निकाल दे सकता है फिर वह तो बेचारा एक नाई ही था। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सिर्फ़ बड़े और तथाकथित भद्र-लोक की ही चीज तो नहीं है। सच और वह भी छुपाने की शर्त! बेचारे का घर पहुँचना मुहाल हो गया। गृहणी को बताते हुए भी डर लगे। होने को तो पुरुष भी कम नहीं होते लेकिन कहते हैं स्त्रियों का हाज़मा इस मामले में कमजोर होता है।

किसी तरह करवटें बदलते रात बीती। जब नींद ही नहीं आ रही थी तो नाई समय से पहले ही दिशा-मैदान के लिए चल पड़ा। उन दिनों खुले में शौच करना देशद्रोह घोषित नहीं हुआ था और न ही बिहार की तरह विकट स्वच्छताग्रही खुले में शौच करने वाले की लुंगी ज़ब्त करके उसे कच्छे में घर जाने को मज़बूर करते थे। शौच करते समय नाई ने देखा कि सामने एक सूखा पेड़ है। उसने आव देखा न ताव और जाकर उससे लिपट गया और सारी राम कहानी सुना दी।

संयोग की बात, वह वृक्ष कोई विशेष वृक्ष था। उसे किसी वाद्य यंत्र बनाने वाले ने ढोल और सारंगी बनाने के लिए चुन लिया। ढोल और सारंगी बने। और फिर संयोग कि उन ढोल और सारंगी के वादक दरबार में पहुँच गए बजाने के लिए। फिर तो आश्चर्य! जैसे ही ढोल बजा तो संगीत निकला - राजा के सिर में सींग।

सारंगी ने प्रश्न किया - तुझे किसने कहा? ढोल का उत्तर था - धाँधू नाई ने।

धाँधू नाई पकड़ा गया। उसका क्या हुआ वह तो उस नगरी के न्याय के बारे में जानने वाले बताएँगे लेकिन इस बोध कथा के अनुसार इतना तो तय पाया गया कि सच किसी सूखे पेड़ को भी नहीं पचता। सच जिसके साथ भी होता है वह उसे किसी और को अग्रेषित करने के लिए बाध्य कर देता है। वह हाथ पर रखा एक अंगार है जिसे धारण किए रहना आसान नहीं है। वह एक ऐसी रोशनी है जिसे किसी भी अँधेरे के पीछे छुपाया नहीं जा सकता।

लेकिन आदमी है कि अपने को बड़ा तीस मार खाँ समझता है। सोचता है कि वह सत्य को धता बताकर, सबकी आँखों में धूल झोंककर अपने झूठ को स्थापित कर देगा। मानवेतर जीवों में यह कुंठा या चतुराई नहीं है। वहाँ जो है वही है। कोई चूहा अपने को शेर प्रचारित और सिद्ध करने में जीवन नहीं बिताता। वह जीता है, चूहे के रूप में और बिना किसी कुंठा के जीता है। वहाँ किसी शेरशाह के लिए किराए के भक्तों से "शेर... शेर..." के नारे नहीं लगवाए जाते। लेकिन मनुष्य की चतुर सृष्टि में जो नहीं है, वह है। जो है, वह नहीं है।

सत्य पर बड़े खतरे हैं। बड़े प्रतिबन्ध हैं। कठोर राजादेश हैं। तभी कामना की जाती है - सत्यमेव जयते - सत्यं एव जयते। सत्य ही विजयी हो।

अमरीका का ध्येय वाक्य है - इन गॉड वी ट्रस्ट - हम ईश्वर में विश्वास करते हैं। जिस भारत को दुनिया में पिछड़ा प्रचारित किया गया, आज जिसे अंधविश्वासों में धकेला जा रहा है वह देश कहता है - सत्य ही ईश्वर है। निर्गुण निराकार ईश्वर को प्रमाणित करने में विवाद हो सकता है लेकिन सत्य के बारे में दो राय नहीं हो सकती। वह भी ईश्वर की तरह एक ही है। सम्प्रदायों के विधि-विधान गढ़े हुए, कृत्रिम और सच से परे हो सकते हैं। हो सकते हैं क्या, प्रायः होते ही हैं। उन्हें सच से डर लगता है। इसलिए सनातन और सार्वकालिक सच के स्थान पर अपनी सुविधानुसार अपना सत्य प्रचारित और स्थापित करते हैं। जबकि हमारे शास्त्र कहते हैं - एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति। फिर ये इतने सत्य मनुष्य को भटकाने के लिए कहाँ से आ जाते हैं?

अब देखिए, सभी पंथों ने अपने-अपने पर्सनल कानून बना रखे हैं और उन्हें किसी भी हालत में लागू किए जाने के लिए दबाव बनाते हैं। मतलब अपने अनुयायियों को, अपना जीवन भी, अपने अनुसार जीने की स्वतंत्रता नहीं देना चाहते। क्या, एक जीव के रूप में अलग-अलग पंथों और धर्मों के मनुष्य अलग-अलग हैं? यदि नहीं, तो एक ही बीमारी के लिए उन्हें अलग-अलग दवाओं की ज़रूरत क्यों बताई जाती है?

इस जनवरी को हिंदुओं के एक तथाकथित संगठन ने फर्रुखाबाद जिले में एक न्यायपीठ बनाई है। इसका औपचारिक उद्घाटन हुआ। यहाँ हिंदू परिवारों में होने वाले विवादों का पंचों के माध्यम से निपटारा किया जाएगा। इसमें एक प्रतिनिधि शिकायतकर्ता की जाति का होगा। इस संदर्भ में कहा गया है कि इसके पीछे अदालत की अवमानना की कोई मंशा नहीं है, लेकिन देश में खुल रहीं शरिया अदालतों (दारुल कजा) का जवाब जरूर है।

ऐसी एक संकुचित, समूहगत और विशिष्ट न्याय व्यवस्था में सत्य के एक होने की सम्भावना कैसे हो सकती है जिनमें एक ही वर्ग के सभी सदस्य भी बराबर नहीं हैं, पुरुष के लिए अलग, स्त्री के लिए अलग, स्त्री में भी बहू के लिए अलग और बेटी के लिए अलग। धनवान के लिए अलग और गरीब के लिए अलग। और फिर क्या इनमें राजनीतिक पार्टियाँ (गिरोह) सत्य को प्रभावित नहीं करेंगे?

राजस्थानी में एक कहावत है - दो राम हो तो मरूँ नहीं

दो राज हो तो डरूँ नहीं।

दो राम हों तो कभी एक और तो कभी दूसरे के नाम से बच जाएँगे। दो राजा होने पर जिसका भी राज होगा उसी का झंडा उठाकर अपनी आपराधिक कार्यवाहियाँ जारी रखी जा सकती हैं। चुनावों में, एक ही दिन में कई-कई बार, किसी ख़ास पार्टी का टिकट मिलने और न मिलने की स्थिति में समस्त जीवन मूल्य और आस्थाएँ बदल जाती हैं। किसी ने एक टिकटार्थी से उसके वर्तमान नेता के बारे में राय जाननी चाही तो उसने कहा - टिकट मिल गया तो विकास-पुरुष और न मिला तो विनाश-पुरुष।

सत्य को अपने अनुसार परिभाषित करने की विभिन्न धर्मों और पंथों की कोशिशें वास्तव में सत्य को नकारने की चाल है।

गाँधी इन्हीं सन्दर्भों में सत्य और सत्य के प्रयोगों की बात करते थे। गत वर्ष उसके जन्म का १५०वाँ वर्ष था। क्या हम इस अवसर पर ही सही, उसके ईश्वर को जो कि सत्य ही है, जानने की कोशिश करेंगे? वह स्वयं को सामान्य जीव कहते और मानते थे। वे गलती करते थे तो उसे स्वीकार करने का साहस और सुधारने का ज़ज्बा भी रखते थे। मज़े की बात यह है कि अपने-अपने असत्यों के शोर में उस बूढ़े का नाम तक याद रखने की किसी को फुर्सत नहीं है।

सत्य किसी का नहीं होता। जो किसी का नहीं होता वही सबका होता है। सत्य किसी व्यक्ति, जाति, धर्म और नस्ल से बहुत बड़ी चीज है। आइये, उस बड़ी चीज की जीत की कामना करें।

आइये दीपावली मनायें

डॉ. शशि ऋषि

आइये दीपावली के शुभ अवसर पर
मन मंदिर में, दीए जलाएँ हम

दीपावली मनायें हम

अँधेरा, भेद-भाव दूर करें हम
अंदर-बाहर, उजाला बढ़ाएँ हम
समाज सेवा में ध्यान लगाएँ हम
निर्धन, कम-भाग्यशाली को गले लगाएँ हम

दीपावली मनायें हम

हम एक ऐसे इंसान बने
जिसे किसी से वैर न हो
सब मित्र हों कोई गैर न हो
मन में प्रेम की भावना हो

दीपावली मनायें हम

आप यशस्वी हों, घर में खुशहाली आये
जगत में प्यार बढ़ाएँ, दीपावली की शुभकामनायें

भारतीय भाषाएँ – एक विस्मृत विनाश

राहुल देव

जो दिखता है वही ध्यान में आता है, रहता है। जो है लेकिन आँख से दिखता नहीं, सिर्फ सुना या महसूस किया जा सकता है, सूक्ष्म है, वह ध्यान में कम या देर से आता है। सारी दुनिया में, सारे मीडिया में, सारे राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय मंचों पर क्लाइमेट चेंज की अनंत चर्चा है। जैव विविधता पर खतरे की, पर्यावरण की चिंता अब सुपरिचित और लोकप्रिय वैश्विक सरोकार हैं। लेकिन जिसे विद्वान जैव विविधता पर खतरे से भी ज्यादा गम्भीर ख़तरा और आसन्न विनाश मानते हैं उस पर चिंता और चर्चा अभी राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय विमर्श में ठीक से शुरू भी नहीं हुई है। यह खतरा है भाषा के लोप का, हमारी भाषाओं के हमारे भविष्य में स्थान, महत्व, भूमिका और विकास के लोप का।

लेकिन ज्यादातर लोगों को यह दिखता नहीं क्योंकि हमने भाषा के बारे में ध्यान से सोचना छोड़ दिया है। और दिन रात हम जिसका साँस लेने की तरह ही अनायास, सहज, सर्वत्र प्रयोग करते हैं उसके प्रति असावधान भी हो जाते हैं। भारतीय भाषाओं पर जिस तरह का खतरा है उसकी ओर ध्यान खींचने के लिए मैं साल २०५० का इस्तेमाल करता हूँ। कल्पना कीजिए २०५० के भारत की, याने आज से ३२ साल बाद। सन् २०५० इसलिए कि देश के विकास के कई संदर्भों में इसका जिक्र किया जाता है एक डेडलाइन के रूप में। तो आइए चलें अपनी कल्पना में। हम मान सकते हैं कि तब तक भारत से चरम गरीबी और निरक्षरता लगभग मिट या बहुत हद तक सिमट चुके होंगे। हमारे गाँवों का विकास, शहरीकरण के रूप में काफी हो चुका होगा, वे पिछड़ेपन के वैसे प्रतीक नहीं होंगे जैसे आज दिखते हैं। आज के पिछड़े, गरीब प्रदेश भी काफी विकसित हो चुके होंगे। शहरी और गाँव की आबादी का प्रतिशत लगभग ५०-५० हो चुका होगा। भारत दुनिया की महाशक्तियों के क्लब में शामिल हो चुका होगा। औद्योगीकरण का प्रसार दूर-दूर तक हो चुका होगा।

अब सोचिए सन् २०५० के उस भारत के ९५ प्रतिशत भारतीय अपनी ज़िन्दगी के सारे गम्भीर कामों में बोलने, पढ़ने और लिखने के लिए किस भाषा का इस्तेमाल कर रहे होंगे? हिंदी में? मराठी में? बांगला में? तमिल में? पंजाबी में? गुजराती में? तेलुगू में? उर्दू में? जवाब हम जानते हैं। आज भारत के एक-एक गाँव के लोग अपने बच्चों के लिए किस भाषा के माध्यम के स्कूलों, कॉलेजों, किताबों की माँग कर रहे हैं? किस भाषा को हफ्तों, महीनों में सिखाने की दुकानें हर शहर, कस्बे में खुल रही हैं और लोग हजारों रुपए देकर वहाँ भरती हो रहे हैं? पूरे देश में ऐसी ही दुकानों-संस्थानों पर कम्प्यूटर सीख रहे लाखों युवा और करोड़ों की संख्या में दिन-रात मोबाइल फोन की नित नई होती, फैलती सम्मोहक दुनिया में रोज घंटों बिता रहे बच्चे, किशोर, युवा और वयस्क किस भाषा के कीबोर्ड के सहज अभ्यस्त होते जा रहे हैं, उसके साथ ही बड़े हो रहे हैं? उनमें से कितने अपनी-अपनी प्रादेशिक भाषाओं के कीबोर्ड का उतना ही अभ्यास या इस्तेमाल करते हैं? देश के "बड़े" लोगों, शहरों, वर्गों, कामों, व्यवसायों की भाषा कौन-सी है? इस देश के "छोटे" लोगों, शहरों, गाँवों, वर्गों, कामों वगैरह के सपनों की, महत्वाकांक्षा की भाषा कौन सी है? भारत हो या इंडिया एक आम भारतीय के गर्व की भाषा कौन सी है, अगर्व की कौन सी?

जैसे आज सारी दुनिया में, वैज्ञानिकों में वैश्विक गर्मी (ग्लोबल वार्मिंग), मौसम परिवर्तन, पर्यावरण और जैव विविधता को बचाने की जरूरतों के बारे में निरपवाद सर्वानुमति है, जैसे अच्छे स्वास्थ्य के लिए संतुलित भोजन और व्यायाम की ज़रूरत के बारे में सारी दुनिया में सर्वानुमति है वैसी ही वैश्विक सर्वानुमति

संसार भर के शिक्षाविदों में इस बात पर है कि पाँचवी या आठवीं कक्षा तक बच्चों के बौद्धिक और शैक्षिक विकास का सर्वश्रेष्ठ माध्यम मातृभाषा या स्थानीय भाषा है। युनेस्को से लेकर भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति तक की इस बारे में साफ, दो टूक राय और सिफारिशें हैं, नीतियाँ हैं। इस वैश्विक और राष्ट्रीय सर्वानुमति के बावजूद भारत की लगभग २० राज्य सरकारें अपने सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में कक्षा एक से अँग्रेजी की पढ़ाई शुरु कर चुकी हैं। और एकाध साल में ही हम पाएँगे कि इस सरकारी स्कूलों में, शहरी और ग्रामीण दोनों, कक्षा एक से पढ़ाई का माध्यम भी अँग्रेजी हो जाएगा। दूसरे विषयों की पढ़ाई कक्षा ३ या ५ या ६ से अँग्रेजी में करने की शुरूआत तो हो ही चुकी है। निजी स्कूलों में तो वर्षों से पढ़ाई और बातचीत का माध्यम अँग्रेजी ही है। निजी स्कूलों से भारतीय भाषाओं की बेइज्जत बेदखली तो सालों पहले की जा चुकी है। उनमें पढ़कर निकले हम जैसों के बच्चे जब लड़खड़ाती, अटकती हिंदी बोलते-पढ़ते हैं तो इस पर सच्ची और सक्रिय शर्म करना भी हम बरसों पहले भूल चुके हैं। जिन्हें इस बारे में सरकारी सोच और कर्म की दिशा देखनी हो वे राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की भाषा सम्बंधी सिफारिशों को आयोग की वेबसाइट पर ज़रूर पढ़ें। १२ से १७ साल में पूरे भारत को अँग्रेजी-दक्ष बनाने की पूरी रणनीति तैयार की है आयोग ने।

आज अँग्रेजी के खिलाफ एक शब्द भी बोलना अपने को पिछड़ा, पुरातनपंथी, अतीतजीवी, एक हद तक बेवकूफ और अँग्रेजी की सर्वविदित, सर्वस्वीकृत उपयोगिता के प्रति अंधे होने के आरोप के लिए प्रस्तुत करने जैसा है। इस जोखिम के बावजूद यह सवाल तेजी से इंडिया बनते भारत के सामने रखना ज़रूरी है कि जो भारत अपने किसी भी ज़रूरी, अहम काम के लिए अपनी किसी भी भाषा का इस्तेमाल नहीं करेगा २०५० और उससे पहले ही, वह कैसा भारत होगा? कितना भारत होगा?

भारतीय भाषाओं के अखबारों, हिंदी फिल्मों, सीरियलों और समाचार चैनलों के विस्तार में हमारे बहुत से मित्र भारतीय भाषाओं के भविष्य के बारे में किसी भी नादान, भावुक शंका का स्वाभाविक जवाब पाते हैं। उनसे केवल दो निवेदन। क्या आप बोली के विस्तार को भाषा का विस्तार मानते हैं? क्या आज वो सब जो हिंदी फिल्में और सीरियल देख समझ रहे हैं हिंदी में पढ़-लिख भी ज्यादा रहे हैं? किसी बड़े शहर के बाजार से गुजर जाइए, कितने बोर्ड, विज्ञापन, दुकानों, इमारतों, उत्पादों, कम्पनियों के नाम स्थानीय भारतीय भाषा में और लिपि में मिलते हैं? हिंदी के विज्ञापनों की भाषा बन जाने में हिंदी का विस्तार और उज्ज्वल भविष्य देखने वालों को सारे सार्वजनिक और व्यावसायिक सम्प्रेषण में देवनागरी लिपि का लोप कैसे नहीं दिखता?

गाँवों से लेकर शहरों तक हमारे नाती-पोतों की पीढ़ियाँ जब कक्षा १ से अँग्रेजी में पढ़-पल कर बड़ी होंगी तब वह भारतीय भाषाओं से कितना लगाव, उन पर कितना गर्व, उनकी कितनी समझ, उनमें कितनी दक्षता रखेंगी? अँग्रेजी-दक्ष, अँग्रेजियत-सम्पन्न इंडिया का आत्मबोध, अपने स्व की समझ, अपनी विशिष्ट अस्मिता का गौरव कैसा होगा? वे पीढ़ियाँ किस भाषा के अखबार, पत्रिकाएँ, किताबें, समाचार चैनल, इंटरनेट साइटें ज्यादा देखेंगी? याद रखिए बात २०५० की हो रही है। साहित्य-संस्कृति तो छोड़िए अपनी सैंकड़ों भाषाओं-बोलियों के माध्यम से इस देश का जो अपार वानस्पतिक, खनिज, खेती, जानवर, मनुष्य, शरीर, आयुर्वेद, धातुविज्ञान, मौसम, मिट्टी, जल प्रबंधन वगैरह का पारम्परिक ज्ञान पीढ़ी-दर-पीढ़ी मिलता रहा है उसका लोप क्या सिर्फ भाषा का लोप है? मुझे भारतीय भाषाओं के इस आसन्न क्षरण में भारतीयता-मात्र का क्षरण, क्रमिक लोप दिखता है।

क्या वैश्वीकृत होते, महाशक्ति बनते, ९-१० प्रतिशत विकास दर की ओर लपकते-ललकते भारत की आज की चिंता का यह भी एक विषय नहीं होना चाहिए?

लकड़ी का रावण

गजानन माधव मुक्तिबोध

दीखता
त्रिकोण इस पर्वत-शिखर से
अनाम, अरूप और अनाकार
असीम एक कुहरा,
भस्मीला अन्धकार
फैला है कटे-पिटे पहाड़ी प्रसारों पर;
लटकती हैं मटमैली
ऊँची-ऊँची लहरें
मैदानों पर सभी ओर
लेकिन उस कुहरे से बहुत दूर
ऊपर उठ
पर्वतीय ऊर्ध्वमुखी नोक एक
मुक्त और समुत्तुंग !
उस शैल-शिखर पर
खड़ा हुआ दीखता है एक द्योः पिता भव्य
निःसंग
ध्यान-मग्न ब्रह्म...
मैं ही वह विराट् पुरुष हूँ
सर्व-तन्त्र, स्वतन्त्र, सत्-चित् !
मेरे इन अनाकार कन्धों पर विराजमान
खड़ा है सुनील
शून्य
रवि-चन्द्र-तारा-द्युति-मण्डलों के परे तक।

दोनों हम
अर्थात्
मैं व शून्य
देख रहे...दूर...दूर...दूर तक
फैला हुआ
मटमैली जड़ीभूत परतों का
लहरीला कम्बल ओर-छोर-हीन

रहा ढाँक
कन्दरा-गुहाओं को, तालों को
वृक्षों के मैदानी दृश्यों के प्रसार को
अकस्मात्
दोनों हम
मैं वह शून्य
देखते कि कम्बल की कुहरीली लहरें
हिल रही, मुड़ रही !
क्या यह सच,
कम्बल के भीतर है कोई जो
करवट बदलता-सा लग रहा ?
आन्दोलन ?
नहीं, नहीं मेरी ही आँखों का भ्रम है
फिर भी उस आर-पार फैले हुए
कुहरे में लहरीला असंयम !
हाय ! हाय !
क्या है यह ! मेरी ही गहरी उसाँस में
कौन-सा है नया भाव ?
क्रमशः
कुहरे की लहरीली सलवटें
मुड़ रही, जुड़ रही,
आपस में गुँथ रही !
क्या है यह !
यह क्या मज़ाक है,
अरूर अनाम इस
कुहरे की लहरों से अगनित
कई आकृति-रूप
बन रहे, बनते-से दीखते !
कुहरीले भाप भरे चेहरे
अशंक, असंख्य व उग्र...
अजीब है,
अजीबोगरीब है
घटना का मोड़ यह ।

अचानक
भीतर के अपने से गिरा कुछ,
खसा कुछ,
नसें ढीली पड़ रही
कमज़ोरी बढ़ रही; सहसा
आतंकित हम सब
अभी तक
समुत्तुंग शिखरों पर रहकर
सुरक्षित हम थे
जीवन की प्रकाशित कीर्ति के क्रम थे,
अहं-हुंकृति के ही...यम-नियम थे,
अब क्या हुआ यह
दुःसह !
सामने हमारे
घनीभूत कुहरे के लक्ष-मुख
लक्ष-वक्ष, शत-लक्ष-बाहु ये रूप, अरे
लगते हैं घोरतर।
जी नहीं,
वे सिर्फ कुहरा ही नहीं है,
काले-काले पत्थर
व काले-काले लोहे के लगते वे लोग।
हाय, हाय, कुहरे की घनीभूत प्रतिमा या
भरमाया मेरा मन,
उनके वे स्थूल हाथ
मनमाने बलशाली
लगते हैं ख़तरनाक;
जाने-पहचाने-से लगते हैं मुख वे।
डरता हूँ,
उनमें से कोई, हाय
सहसा न चढ़ जाय
उत्तुंग शिखर की सर्वोच्च स्थिति पर,

पत्थर व लोहे के रंग का यह कुहरा !
बढ़ न जायँ
छा न जायँ
मेरी इस अद्वितीय
सत्ता के शिखरों पर स्वर्णाभ,
हमला न कर बैठे ख़तरनाक
कुहरे के जनतन्त्री
वानर ये, नर ये !!
समुदाय, भीड़
डार्क मासेज़ ये मॉब हैं,
हलचलें गड़बड़,
नीचे थे तब तक
फ़ासलों में खोये हुए कहीं दूर, पार थे;
कुहरे के घने-घने श्याम प्रसार थे ।
अब यह लंगूर हैं
हाय हाय
शिखरस्थ मुझको ये छू न जायँ !!
आसमानी शमशीरी, बिजलियों,
मेरी इन भुजाओं में बन जाओ
ब्रह्म-शक्ति !
पुच्छल ताराओं,
टूट पड़ो बरसो
कुहरे के रंग वाले वानरों के चेहरे
विकृत, असभ्य और भ्रष्ट हैं...
प्रहार करो उन पर,
कर डालो संहार !

अरे, अरे !
नभचुम्बी शिखरों पर हमारे
बढ़ते ही जा रहे
जा रहे चढ़ते
हाय, हाय,
सब ओर से घिरा हूँ ।

सब तरफ़ अकेला,
शिखर पर खड़ा हूँ।
लक्ष-मुख दानव-सा, लक्ष-हस्त देव सा।
परन्तु, यह क्या
आत्म-प्रतीति भी धोखा ही दे रही !
स्वयं को ही लगता हूँ
बाँस के व कागज़ के पुट्ठे के बने हुए
महाकाय रावण-सा हास्यप्रद
भयंकर !
हाय, हाय,
उग्रतर हो रहा चेहरों का समुदाय
और कि भाग नहीं पाता मैं
हिल नहीं पाता हूँ
मैं मन्त्र-कीलि-सा, भूमि में गड़ा-सा,
जड़ खड़ा हूँ
अब गिरा, तब गिरा
इसी पल कि उस पल...

बेबी, खाना खा लिया?

समीर लाल "समीर"

जैसे हाउस वाइफ होती हैं, याने कि वो महिला जिसकी जिम्मेदारी घर सँभालना रहती है। मसलन खाना बनाना, कपड़े धोना एवं घरेलू कार्य करना। वह कहीं काम पर नहीं जाती है। उस पर कमाने की जिम्मेदारी नहीं होती है। काम पर जाना और कमा कर लाना पति का काम होता है। समय के साथ-साथ थोड़ी परिभाषा बदली है जिसमें अब हाउस वाइफ होने के लिए केवल अनिवार्य बात इत्ती-सी बची है कि वह कहीं काम पर नहीं जाती है। उस पर कमाने की जिम्मेदारी नहीं होती है बाकी सब वैकल्पित हो गया है।

वैसे भी आजकल महानगरों में तो कम से कम पति-पत्नी दोनों ही काम पर जाते और कमाते हैं तो हाउस वाइफ वाली तो बात इनके बीच बची नहीं। दोनों ही वर्किंग हैं। इसमें तो पति-पत्नी वाली बात ही सलामत रह आये, उसी की कशमकश है। दोनों कैरियर के प्रति सजग। दोनों की अपनी प्राथमिकतायें। दोनों के पास सफेद कमीज इस हेतु कि भला उसकी कमीज मेरी कमीज से ज्यादा सफेद कैसी? इसी होड़ में दाम्पत्य जीवन की गाड़ी के दो पहिये अक्सर ही समानान्तर चलने की बजाये आगे-पीछे हो लेते हैं और कई बार तो अलग-अलग दिशाओं में भागने लगते हैं और दाम्पत्य जीवन की गाड़ी लड़खड़ाते-लड़खड़ाते टूट कर धराशाही ही हो जाती है।

तब एक नया विकल्प और बाजार में पापुलर हो रहा है जिसे हाउस हसबैण्ड कहते हैं। पश्चिम में नौकर-चाकर तो होते नहीं तो सभी काम खुद करने होते हैं। अतः हाउस हसबैण्ड से आशा रहती है कि वो घर के काम-काज देखेगा और वर्किंग वाइफ बाहर जाकर काम करके पैसा कमा कर लायेगी जिससे घर चलेगा। पश्चिम के लिए हो सकता हो यह काम पर न जाने वाला पति जिसे हाउस हसबैण्ड कहा गया, एक नया कान्सेप्ट हो मगर हमारे यहाँ तो कई पुश्तों से घर में एकाध लोग ऐसे होते ही थे। सारा परिवार उनको निखट्टू पुकारता था मगर उनकी अकड़ किसी भी कमाने वाले के ऊपर ही होती थी। बड़े बुजुर्ग उनको देख कर कहते थे कि न काम के न काज के, दुश्मन अनाज के।

दरअसल निखट्टू और हाउस हसबैण्ड में एक व्यवहारिक अंतर तो यह दिखता है कि निखट्टू की पत्नी फिर भी हाउस वाइफ ही होती थी अधिकतर और उनके यहाँ ज्वाइन्ट फैमली के कारण काम-काज की जिम्मेदारी पिता से लेकर भाईयों तक किसी की भी हो सकती थी।

वक्त के साथ-साथ जैसे-जैसे महिलाओं के सम्मान और दर्जे की बात जोर पकड़ती गई, हाउस वाइफ को होम मेकर पुकारा जाने लगा। नाम बदल जाने का बहुत असर माना गया है। प्लानिंग कमीशन और नीति आयोग, नाम का अंतर ही इन्हें एक-दूसरे से अलग बनाता है। और वही होम मेकर जब माँ बन जाये तो स्टे-होम मॉम कहलाने लगी। नये समय के हाउस हसबैण्ड होम मेकर वाली पायदान पर कभी खड़े न हो सके मगर पिता बनते ही स्टे-होम डैड ज़रूर हो लिए। पुरुष और होम मेकर। हूँह... ही केन नेवर बी होम मेकर... घर लौटकर हमको रोज चैक करना ही पड़ता है कि उसने अपनी जिम्मेदारी का ठीक से निर्वहन किया कि नहीं और गैस व्हाट? ९० प्रतिशत हम पातीं हैं कि नहीं! लगता है जल्द जमाना आयेगा, जब पुरुष अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाने पर बाध्य होंगे इस तरह की लानतों-मलानतों के बाद।

वैसे सहस्त्र सदियों से पुरुष प्रधानता का आदी पुरुष मस्तिष्क, कुछ सदियाँ तो लेगा ही सुधरते-सुधरते। तो आज भी वो हाउस वाइफ में जहाँ वाइफ से पत्नी धर्म निभाने, पति की हुकूमत मानने आदि का आदी है, वो वाइफ जब वर्किंग वाइफ हो जाती है और खुद चाहे वर्किंग हसबैण्ड हों या हाउस हसबैण्ड हो जाते हों, वाईफ के साथ का वर्किंग और खुद के साथ का हाउस उनके लिए साइलेन्ट शब्द हो जाता है और रोल परिवर्तन या कमाने में साझेदारी के बावजूद भी पत्नी से उम्मीदों में वही आसमाँ पाले रहते हैं जबकि पत्नी को आशा हो जाती है कि अब मैं कमाती हूँ या मैं भी कमाती हूँ तो फिर वही पुराना आसमाँ क्यूँ उम्मीदों का।

यहीं क्यूँ और यही पुरानी उम्मीदें और आशायें। जीवन के आंतरिक ढ़ाँचे को इस तरह हिलाता है कि सब बेहतरीन है दिखाने के लिए रंग रोगन की जरूरत पड़ने लग जाती है। सहज कुछ दिखता ही नहीं। तेल घी खाने की गलत आदतों से उगे मुँहासे जब चेहरे पर दाग धब्बे छोड़ जाते हैं तो अपनी झूठी खूबसूरती का भ्रम पैदा करने के लिए फाउण्डेशन और मेकअप की परतों का इस्तेमाल ज़रूरी हो जाता है। हालाँकि कुछ ही समय में यह परत भी धता बता जाती है और सब जगजाहिर हो लेता है मगर एक अन्तराल तक तो काम चल ही जाता है। भ्रम की उम्र भी तो इंसानी कैफियत रखती है, सीमित होने की।

यही क्रीम फाउंडेशन आज के इन दरकते रिश्तों में तरह-तरह के सम्बोधन बने हुए हैं। दोनों एक-दूसरे से बात-बात में पब्लिक के सामने। बेबी, खाना खा लिया? जानू, नाई-नाई (नहाई) कर ली? लव यू डार्लिंग! मेरा बाबू... मेरा सोना... लेट मी गिव यू ए हग्गी... और न जाने क्या-क्या? आपको सुन कर ऐसा लगेगा कि यार हम तो आपस में प्यार करते ही नहीं। हमारी तो पूरी जनरेशन निकम्मी निकल गई मगर बात वही... इनके टूटते रिश्तों को देखकर... अच्छा है... हमने सिर्फ रिश्ते को अहसासा है, जताया नहीं। ये जता तो रहे हैं इन वाक्यों से... सम्बोधनों से मगर अहसास क्यूँ नहीं रहे?

हम उस युग के बाद के ही सही जब खाने की थाली उठाकर फेंकी नहीं का मतलब होता था कि खाना बढ़िया बना है। मगर ये कह कर कि खाना बेहतरीन बना है, आज तक इससे बेस्ट कहीं खाया नहीं... और उस खाने की फेस बुक पर फोटो चढ़ा कर भूखे उठ जायें कहीं और बेहतर खाने की तलाश में, कि कम से कम पेट तो भर जाये... वो हमने सीखा नहीं।

चाहे कैसा भी जमाना आ जाये। हाउस वाइफ, हाउस हसबैण्ड, स्टे होम मॉम, स्टे होम डैड, वर्किंग कपल, हर वक्त दरकार बस एक ही होगी। एक दूसरे को इंसान समझने की। एक-दूसरे को सम्मान देने की, एक-दूसरे से समझौता करने की। एक-दूसरे के दर्द साझा करने की। तभी सही मायने में, मेरा बेबी, खाना खाया क्या? खाना खा पायेगा और नाई-नाई कहने के पहले ही नहा-धोकर राजा बेटा बन कर सामने आ जायेगा।

बचपन

डॉ. अजय श्रीवास्तव

सारे जहाँ से बेपरवाह मचलता हुआ बचपन
माँ के आँचल तले खिलता हुआ बचपन
नानी दादी के किस्से सुनकर हर्षित होता बचपन
सितारों के मानिंद झिलमिलाती आभा वाला बचपन

हर आँखों का तारा थिरकता हुआ बचपन
ईश्वर की सौगात दुलारा बचपन
चढ़ती हुई उम्र के धक्के खाकर
कही पीछे छूट गया बचपन

न जाने जाति, धर्म, भाषा के झगड़े बचपन
न जाने दुनिया जहाँ की कुटिल चालों को बचपन
केवल जानें प्यार-दुलार की भाषा बचपन
गाँव, गली, मोहल्लों को गुलजार करता बचपन

आज कही खो गया है पुराना वाला बचपन
हैवानों के हाथों सिसकता हुआ बचपन
गरीबी, बेबसी, अभाव के मार से झुलसता बचपन
रखवालों के हाथों ही कुचला जा रहा बचपन

नेहरू की आशाओं के दीप रहा यह बचपन
भविष्य के ही कर्णधार यह बचपन
माँग रहा है अपना पुराना दिन बचपन
कोई कैसे लौटाये हम सारों का वह पुराना बचपन

छत का टपका और चोर

प्रो. सुरेश ऋतुपर्ण

बहुत समय पहले की बात है। जापान के कुमामोतो प्रदेश में एक बूढ़ा और बुढ़िया अपने छोटे-से पुराने घर में रहते थे। यह घर बहुत पुराना हो गया था और बरसात के दिनों में तो घर में रहना भी मुश्किल हो जाता था। इस बूढ़े व्यक्ति के पास एक बढ़िया नस्ल का घोड़ा था जिस पर बैठकर कभी-कभी वह गाँव के बाजार में जाता था और घर का सब सामान खरीदकर ले आता था।

इस घोड़े पर एक चोर की नजर थी। वह इसे चुरा, कहीं बेचकर बहुत-सा पैसा कमाना चाहता था, लेकिन उसे इसको चुराने का अवसर नहीं मिल पाता था। गाँव के सभी लोग इस बूढ़े व्यक्ति के घोड़े को पहचानते थे इसलिये चोर को लगता था कि यदि उसने उसे दिन में चुराया तो उसे ले जाते समय सब लोग पहचान लेंगे और वह पकड़ा जा सकता है। इसलिये उसने रात में घोड़ा चुराने का विचार किया, क्योंकि तब गाँव के सब लोग घरों के अंदर होंगे। ऐसा सोच एक दिन शाम होते ही वह चुपचाप घोड़े के अस्तबल की छत पर जाकर छिप गया। मौके की बात थी कि उस समय घोड़ा अस्तबल में नहीं था। वह घास चरने बाहर गया हुआ था इस कारण से उसके पास इंतजार करने के अलावा कोई और चारा न था। वह अस्तबल की छत के बीच में लगी लकड़ी की शहतीर पर चिपककर लेट गया। वह काफी देर तक इंतजार करता रहा लेकिन घोड़ा लौटकर नहीं आया। बाहर मौसम भी ठीक नहीं था। बादल गरज रहे थे और हो सकता था कि जोर की बरसात भी हो जाये। शहतीर पर चिपके-चिपके उसे वहाँ नींद आ गई।

उधर पास के जंगल में ही एक भेड़िया अपनी गुफा में रहता था। बरसात के मौसम के कारण उसे भी भोजन के लाले पड़ गये थे। अत: उसने सोचा कि पास में रहने वाले बूढ़े-बुढ़िया को मारकर बढ़िया भोजन किया जाये। ऐसा सोचकर वह भी उनके घर की ओर चल दिया। उसने देखा कि घर के पीछे का दरवाजा खुला है। असलियत में, यह दरवाजा घोड़े के आने के लिये खुला रखा गया था। भेड़िया बड़े आराम से घर के अंदर आ गया और उस कमरे के दरवाजे के पास जाकर खड़ा हो गया जिसमें बूढ़ा और बुढ़िया रहते थे। वह अभी सोच ही रहा था कि उन पर आक्रमण किया जाये कि तभी उसने सुना की बूढ़ा, बुढ़िया से पूछ रहा था "इस दुनिया में सबसे खतरनाक और डरावनी चीज क्या है?" यह सुनते ही भेड़िया वहीं खड़ा का खड़ा रह गया। उसके मन में आया कि यह मजेदार बातचीत सुननी चाहिये।

बुढ़िया ने कहा - "मैं समझती हूँ कि दुनिया में सबसे डरावनी और खतरनाक चीज तो जंगल का भेड़िया है।"

यह सुनकर भेड़िया घमण्ड से फूलकर कुप्पा हो गया। उसने सोचा - "काश! जंगल के और जानवरों ने भी यह बात सुनी होती तो कितना मजा आता।"

तभी बाहर बादल गरजने लगे और लगने लगा कि जोर की बारिश होगी। उसकी आवाज सुनकर बूढ़ा कुछ बेचैन हो गया। तब बुढ़िया ने उससे पूछा- "अब आप भी बताएँ कि दुनिया की सबसे डरावनी और खतरनाक चीज क्या है?"

भेड़िए ने सोचा कि - बूढ़ा भी यही कहेगा कि सबसे डरावनी और खतरनाक चीज तो भेड़िया ही है। पर उसकी आशा के विपरीत बूढ़ा बोला- "मेरे लिये तो इस पुराने घर की छत से आने वाला पानी का टपका ही सबसे डरावनी और खतरनाक चीज है।"

भेड़िया यह सुनकर एक क्षण को सन्न रह गया। यह क्या? मैं तो सोचता था कि मैं सबसे बलवान हूँ। इसलिये सब मुझते डरते हैं। लेकिन यह "छत का टपका" तो मुझसे भी खतरनाक जानवर निकला।

तभी जोर की बारिश होने लगी और बूढ़ा एकदम जोर से चिल्लाने लगा- "अरे! जल्दी उठो। अब तो टपका आने वाला है।" यह कहकर वह छत की ओर देखने लगा तथा कमरे में उधर-उधर पड़ी चीजों को उठाने लगा।

भेड़िए की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। वह समझ ही नहीं पा रहा था कि क्या करे। उसे यह भी डर लगने लगा कि यदि "छत का टपका" आ गया तो कहीं उसे ही न मार डाले।

उधर, ऊपर लेटे हुये चोर की नींद भी बारिश के शोर के कारण खुल गई। उसने सोचा कि अब तक तो घोड़ा आ गया होगा। उसने नीचे की ओर देखा जहाँ भेड़िया खड़ा था। अँधेरे में उसे लगा जैसे नीचे घोड़ा ही खड़ा है। उसने आव देखा न ताव, एकदम ऐसे छलाँग लगाई कि वह ठीक भेड़िए की पीठ पर आकर गिरा।

भेड़िया इस अचानक आई स्थिति के लिये तैयार न था। उसने सोचा- हो न हो यह वही खतरनाक "छत का टपका" ही है जिसकी बात वह बूढ़ा कर रहा था। वह डर के कारण एकदम मुड़कर भागने लगा। चोर ने भी उसकी पीठ पर चिपककर उसके बालों को जोर के पकड़ लिया था। चोर भी डरने लगा था। यह कैसा घोड़ा है जो बस अपने-आप दौड़ा जा रहा है, रुकने का नाम ही नहीं ले रहा है। उसने उसे और कसकर पकड़ लिया। इतना कसकर कि भेड़िए को लगा - अब यह "छत का टपका" तो उसे इसी तरह भींचकर, दबाकर मार डालेगा। वह और जोर से भागने लगा। उसे अब सामने अपनी गुफा दिखाई देने लगी। उसकी जान में जान आई। वह अपनी पूरी ताकत लगाकर दौड़ने लगा और सीधे गुफा में घुस गया। गुफा का मुँह छोटा था इसीलिये गुफा के मुँह में भेड़िए के घुसते ही चोर उससे टकराकर बाहर गिर गया और बेहोश हो गया। उधर भेड़िया गुफा के अंदर पहुँचकर बड़ी देर तक हाँफता रहा। उसके मुँह से आवाज ही नहीं निकल रही थी। उसके अन्य साथी जानवर उसके आसपास आकर इकट्ठे हो गये, पर वे सारी बात समझ नहीं पा रहे थे। जब भेड़िए की साँस सामान्य गति पर लौटी तो उसने बताया कि आज वह कैसी भयानक स्थिति से बचकर आया है। उस पर आज "छत का टपका" नाम के भयानक जानवर ने आक्रमण कर दिया था। बड़ी मुश्किल से उसके प्राण बचे हैं।

जल्दी ही यह बात सारे जंगल में फैल गई जिसे सुनकर सारे जानवर हक्के-बक्के रह गये क्योंकि उन्होंने आज तक ऐसे किसी जानवर का नाम भी नहीं सुना था। बन्दर, जो अपने को बहुत चतुर समझता था, सामने आकर बोला- "लगता है आपको कोई भ्रम हो गया है क्योंकि ऐसा कोई जानवर होता ही नहीं है। मैं तो लोगों की छतों पर रोज ही जाता हूँ। पर मैंने आज तक छत पर रहने वाले किसी जानवर को देखा ही नहीं है।

उसकी बात सुनकर भेड़िए को गुस्सा आ गया- "तो क्या मैं झूठ बोल रहा हूँ? सच तो यह है कि जिस पर पड़ती है वही जानता है। यदि ऐसी ही बात है बाहर जाकर देखो। क्या पता "छत का टपका" तुम्हें इंतजार करता मिले क्योंकि वह मेरी पीठ पर चढ़कर यहाँ तक आया था।"

बंदर की जान साँसत में आ गई। उसे भी मन ही मन डर लग रहा था बाहर जाने में। क्या पता भेड़िए की बात सच हो। तभी उसने सोचा- पहले बाहर पता कर लेना चाहिये कि कोई है या नहीं। ऐसा सोचकर उसने अपनी पूँछ धीरे-धीरे बाहर निकालनी शुरू की। उन दिनों बंदर की पूँछ काफी मोटी और लम्बी होती थी। जब वह पूँछ बाहर की ओर आई तो चोर के मुँह पर आकर लगी। उसकी सरसराहट से उसकी बेहोशी टूट गई और वह एकदम चौकन्ना हो गया। जब उसने उस पूँछ को देखा तो घोड़े की पूँछ समझकर जोर से खींचने लगा। जैसे ही बंदर को लगा कि कोई पूँछ को बाहर से खींच रहा है तो वह एकदम घबरा गया और डर के मारे चीख-चीख पूँछ को पूरी ताकत से अंदर की ओर खींचने लगा। इस रस्साकशी में बंदर की पूँछ बीच में से पतली होकर टूट गई। पूँछ के टूटते ही दोनों जोर से अपनी-अपनी ओर गिर गये। चोर एक पेड़ से जा टकराया और वहीं मर गया।

दूसरी ओर गुफा के अंदर बंदर सामने से चट्टान में टकराया। चट्टान से टकराने के कारण उसका मुँह एकदम लाल हो गया और उसके चेहरे के बाल भी घिसकर उड़ गये। उसकी पूँछ भी टूटकर छोटी हो गई थी। कहा जाता है कि तभी से बंदर का मुँह लाल, बिना बालों और पूँछ छोटी होती है।

करवा चौथ

डॉ. ओम गुप्ता

आज मेरे दिल में क्या है, कोई मुझको दे बता ।
चाँद किस बदली के पीछे, कोई मुझको दे बता।।

व्रत किए मैंने बहुत, तेरा दीदार पाने के लिए ।
मुझको पता दो यार का, है कहाँ वो लापता ।।

छोड़ी मैंने ज़ालिम ये दुनिया, जाने-मन तेरे लिए ।
अब सही जाती न तड़पन, क्यों रहा मुझको सता ।।

हे जाने-मन तेरे बिना, बीते बहुत हैं रात-दिन ।
बिस्मिल हुआ तेरे लिए, अब तो प्यारे दे बता ।।

चौथ-करवा आई प्यारे, दुआ करता है 'ओम'।
जोड़ी रखे तेरी सलामत, जिसको सब कुछ है पता ।।

नेताजी का भाषण

धर्मेन्द्र कुमार

नेताजी खादी धारण किये, गाँधीवादी टोपी सँभाले, माईक पकड़े मंच से बोल रहे थे, "बन्धुओं मैं सत्ता में आते ही जात-पाँत और धर्म का आडम्बर ख़त्म कर दूँगा। इससे बहुतों की मानहानि हुई है, मान-सम्मान और गरिमा का अनादर हुआ है, प्रतिभाएँ कुंठित हुई हैं, आपसी शत्रुता और वैमनस्य को बढ़ाया है, सदा ख़ून की नदियाँ बहायी हैं। मैंने प्रण लिया है कि राष्ट्र को जाति-धर्म मुक्त बनाऊँगा। मैं अक्सर गरीबों के यहाँ रात गुजारता हूँ। दलितों, शुद्रों के यहाँ खाना खाता हूँ। बहुत नज़दीक से उनकी बेबसी, लाचारी, गरीबी और सिसक को देखा है। मैं इस कुप्रथा को हमेशा के लिए समाप्त कर दूँगा।"

समाज के एक बड़े समुदाय ने कोसा, "जिसे ईश्वर ने स्वयं बनाया है, उसे तुम तो क्या, तुम्हारा बाप भी ख़त्म न कर सकेगा। यह तो सरासर अधर्म है। इस पाखण्डी, अधर्मी को कौन वोट देगा?"

शिक्षित समुदाय बोला, "धन्य हैं नेताजी ! और धन्य हैं इनके कारनामें। लगता है अब देश और जनता का कल्याण होकर रहेगा। कितना विशाल हृदय ! बराहमन होकर नीचों के यहाँ खाना खाते हैं। लगता है, युग परिवर्तन के दिन आ गये। ऐसे सहृदय व्यक्ति को कौन वोट नहीं देगा?"

नेताजी बोलते रहे, "भ्रष्टाचार, घूसखोरी और नशामुक्त भारत का निमार्ण करूँगा। जहाँ सबके लिए समान वेतन और समान सुविधाएँ होंगी। कोई बड़ा और छोटा न होगा। ड्युटी के बाद कोई वी० आई० पी० न रहेगा। किसी को सरकारी खर्चें का अतिक्रमण करने का अधिकार न होगा। अन्य कर्मचारियों की भाँति सांसदों और विधायकों का भी पेंशन बंद कर दिया जाएगा या सभी कर्मचारियों पर लागू कर दिया जाएगा। दोहरा व्यवहार हरगिज़ बर्दास्त न होगा। एक ही व्यक्ति को दो-दो या तीन-तीन जगहों से वेतन लेने का कोई अधिकार नहीं।"

समाज का छोटा भाग, "मारों इस सत्यानाशी को, बड़ा-छोटा भी समाज से कभी ख़त्म होगा ! अमीर-गरीब सदा से रहे हैं, और आगे भी रहेंगे। ये शाश्वत चीज़े हैं, सत्युग में न ख़त्म हुआ, तो अब क्या होगा। इस न्याय के पुतले को चुनाव में बताएँगे। कभी जीत न पाएगा !"

समाज का बड़ा तबका, "कितना उच्च और पवित्र विचार हैं। लूट-खसोट ख़त्म होना उतना ही ज़रूरी है जितना समाज से आर्थिक विषमता का समाप्त होना। नेताजी की दृष्टि उनके शरीर के विपरीत है। लोकतंत्र की सार्थकता इसी में है, इन्हें जीतने से कौन रोक सकेगा ?"

नेताजी आगे बोले, "कानून की कठोरता और वृहत्ता जिसमें हर जोड़ का तोड़ है तथा संदेहात्मक तत्वों को समाप्त कर असंदिग्ध और कठोर, स्पष्ट संविधान का निर्माण करना मेरी मंशा है। किन्तु इसके लिए मेरा बहुमत से आना बहुत जरूरी है। बलात्कार, हिंसा, देश-द्रोह, छुआ-छूत, भेद-भाव और सर्वजनिक सम्पत्ति का दुरुपयोग तथा ठगी, बेईमानी, घूसखोरी आदि अपराधों के लिए मौत की सजा सुनिश्चित करूँगा। अब केस-फौज़दारी वर्षों न चलेगी, मात्र दो महीने के अंदर सजा तय हो जाएगी। तब देखूँगा बुराइयाँ कैसे नहीं समाप्त होती हैं।"

समाज का छोटा भाग, "ये क्या मज़ाक है ! बच्चों का खेल है, फाँसी पर चढ़ा दोगे ! कौन घूस नहीं लेता? लेकर अकेले खाता नहीं इसका हिस्सा ऊपर तक जाता है। जो जितना ऊँचा है उतना ही कलुषित और दोषी है। कोई कह दे मैं इस सत्य से अनभिज्ञ हूँ, तो खड़े-खड़े अपनी मूँछें ऊखड़वा लूँ। इन्हीं महाशय से पूछिये, जलसों, मंचों के व्यवस्था, पार्टियों के संचालन तथा चुनावों के समय ख़र्च करने के लिए इतना पैसा कहाँ से आता है? यह नेता है कि कसाई इस विधर्मी को चुनाव में बताएँगे। न खुद वोट देंगे, न दूसरों को देने देंगे।"

समाज का बड़ा भाग, "सचमुच ऐसा हो जाए तो धरती स्वर्ग बन जाएगी। कितना नेक दिली और न्यायप्रिय इंसान है। मानों लोकतंत्र घनीभूत होकर बरसने वाला है। आने दो चुनाव, हम भी वोट देंगे और दूसरों से भी दिलवायेंगे।"

छः महीना बाद।

देश का सबसे बड़ा मैदान जनता से ख़चाख़च भरा हुआ है। नेताजी चुनाव में बहुमत से विजय होने के बाद उसी पोशाक में, उसी मंच पर अपनी धर्मपत्नी और पच्चीस वर्षीय लड़का तथा इक्कीस वर्षीय कन्या के साथ उपस्थित हुए हैं। वे माईक के आगे कह रहे हैं, "सज्जनों ! मुझे अपना वचन याद है। विभिन्न प्रकार की कुरीतियों और बुराइयों को मिटाने, बेरोज़गारी ख़त्म करने तथा बराबरी और समानता का हक़ दिलाने का दिन आ गया है। इस शुभ उद्देश्य की शुरुआत आज से, बल्कि अभी से होगी। आप लोगों के सामने आज दस अंतर्जातीय और अंतर्धार्मिक विवाह सम्पन्न होगा। दूल्हा-दुल्हन आ चुके हैं।" पिता के सुकृति से बेटा राहुल और बेटी पुष्पा भक्तिमय और गद्गद् हुए जाते थे। कुछ कहने की इच्छा से कई बार उठे किन्तु संकोचवश बैठ गये।

कुछ ही देर में दस दूल्हा-दुल्हन का जोड़ा मंच पर आ गया। माला डाल कर शादी की रस्म पूरा होने ही वाला थी, तभी राहुल हिम्मत करते हुए खड़ा होकर बोला, "इस शुभ घड़ी और पिताजी के पुण्य कार्य में मैं भी सहयोग करना चाहता हूँ। यदि गोसाई राम को एतराज़ न हो तो मैं उनकी दुहिता सुशीला से परिणय करना चाहूँगा।"

मंच के एक कोने में मालाओं का ढेर लगा था। उसमें से एक माला लेकर सुशीला मंच पर आ गयी।

भाई के साहसपूर्ण कार्य से पुष्पा भी उत्तेजित हो गयी, दबी चिंगारी को भाई के मनोबल ने हवा दे दी। भय और कुरीतियों का डर जाता रहा। माईक के पास आकर बोली, "पूज्य पिताजी और आदरणीय भैया जी को मालूम हो कि मैं इस सुकर्म में उनसे पीछे नहीं रहूँगी। मैं पिताजी के कर्मठ कार्यकर्ता अर्जुन डोम के बेटे चन्द्रशेखर डोम से प्रेम करती हूँ, और इस पावन घड़ी में उनसे शादी कर पिताजी की कीर्ति में चार चाँद लगाना चाहती हूँ।" चन्द्रशेखर माला लेकर मंच पर आ गया।

उसी समय नेताजी की पत्नी माईक के पास आकर बोली, "मुझे अपने पति, बेटे और बेटी पर गर्व है। मंच पर जितने भी वर-वधू खड़े हैं सभी मेरी संतान हैं। इतना साहस और सुकृति शायद ही किसी ने दिखायी हो। मेरे पति देवता के तमाम गुणों से युक्त हो गये हैं। यह शक नहीं कि मैं इनसे अटूट प्रेम करती थी, किन्तु अब पूजा करूँगी। आज से वे मेरे श्रद्धा और भक्ति के पात्र हो गये हैं। यहाँ उपस्थित सभी वर-वधू को सच्चे हृदय से आशीष देती हूँ और उनके मंगलमय, सुखद भविष्य की कामना करती हूँ।"

पंडित भानु प्रताप ने बेटे, बेटी और पत्नी की तरफ़ आग्नेय नेत्रों से देखा, उनकी आँखों से ज्वाला निकल रही थी। क्रोध से शरीर काँप रहा था, दाँत आपस में रगड़ खा रहे थे। हवा बहने के बावजूद भी पसीने से तर हो गये थे। चेहरा लाल, तमतमा गया था। वे चीखने ही वाले थे कि बड़े आवाज़बक्स से अनजानी आवाज़ निकली, "आप घबड़ाइये मत, मंत्री जी चाहते हैं सारी सरकारी नौकरियाँ ठेके पर कर दी जाए। जिससे व्यय का एक बहुत बड़ा स्रोत बच जाएगा, जो हमारे चुनावी जलसों और वेतन-भत्तों के काम आएगा। ठेकेदारी के कमीशन से हम माला-माल हो जाएँगे। जात-पाँत के नाम पर दो-चार शादियाँ करा देंगे, भ्रष्टाचार के नाम पर विपक्षियों का भंडाफोड़ कर फाँसी पर चढ़ा देंगे, संविधान में फेर-बदल भी होगा, किन्तु अपने हक़ में। बिजली-सड़क देंगे, डीजल-पेट्रोल और रसोई गैस भी देंगे किन्तु उसका मनमाना दाम भी लेंगे। सांसदों का वेतन-भत्ता बढ़ाना ज़रूरी है, उन्हीं पर हमारी सरकार टिकी है।" देखने पर पता चला यह आवाज़ मंच के पीछे से आ रही थी। जहाँ समस्त मंत्रिगण बैठे देश के भविष्य की चिंता कर रहे थे, नीति और रणनीति बना रहे थे। गलती से उनके बीच वाले टेबल पर रखी माईक खुली रह गयी थी।

मन हठीला

भावना सक्सैना

अकौआ के डोडे से
छितरे फायों सी रही
स्त्री की ख्वाहिशें
जरा सी हवा में
बस तितर-बितर...
लेकिन उसका मन
वो बीज हठीला
हर हवा के संग
तलाशता नई ज़मीं।
नहीं चाहिए उसे
भूमि जुती हुई
न खाद, न सिंचाई,
वो पथरीली दरारों में,
तपती रेतीली भूमि में
खोज लेता है नमी,
दृढ़ता की जड़ों को
गहरे जमाकर भीतर
करता है पोषित अपना तन
और खिला लेता है
फूल सम्भावनाओं के...
कि ख़्वाहिशो के पंख
होते हैं नाज़ुक
पर मन रखता है
शक्ति अपरिमित।

राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी और महात्मा गाँधी

डॉ. अमरनाथ

आजादी के अनेकों साल बीत गए। आज भी हमारे देश के पास न तो कोई राष्ट्रभाषा है और न कोई भाषा नीति। दर्जनों समृद्ध भाषाओं वाले इस देश में प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक और न्याय व्यवस्था से लेकर प्रशासनिक व्यवस्था तक सब कुछ पराई भाषा में होता है फिर भी उम्मीद की जाती है कि वह विश्व-गुरु बन जाएगा।

भाषा समस्या का समाधान क्यों नहीं हुआ? क्या यह आज भी विचारणीय मुद्दा नहीं है? सरकार की ओर से तो किसी तरह की कोई पहल नहीं हो रही है। क्या इसके पीछे कोई ऐतिहासिक कारण भी है? इस मुद्दे पर गाँधी जी का क्या दृष्टिकोण था और संविधान सभा में उस पर कितना अमल हुआ? इन सवालों पर पुनर्विचार करना आज समय की माँग है। १२ से १४ सितम्बर १९४९ तक लगातार चलने वाली संविधान सभा की बहस के परिणाम स्वरूप धारा ३४३ वजूद में आया और भारत संघ की राजभाषा "देवनागरी लिपि" में लिखी जाने वाली "हिन्दी" तय की गई। यह बहस इस दृष्टि से भी अभूतपूर्व थी कि सदस्यों की इतनी बड़ी उपस्थिति अन्य किसी मुद्दे पर होने वाली बहसों में पहले कभी नहीं हुई थी और इस बहस में सबसे अहम मुद्दा था हिन्दुस्तानी और हिन्दी में से किसी एक को राजभाषा बनाने का मुद्दा। हम सभी जानते हैं कि गाँधी जी हिन्दुस्तानी के समर्थक थे। हिन्दी के हित में लगातार काम करते हुए गाँधी जी ने अपनी अवधारणा को अपने अनुभवों से और अधिक पुष्ट किया और निर्णय लिया कि देश की राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी होनी चाहिए जिसे हिन्दी और उर्दू (फारसी) दोनों लिपियों में लिखा जा सकता है। गाँधी जी को इस तथ्य की भलीभाँति पहचान हो गई थी कि जिस भाषा को उत्तरी भारत में आम लोग बोलते हैं, उसे चाहे उर्दू कहें चाहे हिन्दी, दोनों एक ही भाषा है। यदि उसे फारसी लिपि में लिखें तो वह उर्दू भाषा के नाम से पहचानी जाएगी और नागरी में लिखें तो वह हिन्दी कहलाएगी। इसीलिए उन्होंने "हिन्दुस्तानी" कहकर इन दोनों के समन्वय का उपयुक्त मार्ग ढूँढ लिया था।

इस हिन्दुस्तानी के इतिहास को भी थोड़ा देखें। हिन्दी का पहला व्याकरण हालैंड निवासी जॉन जोशुआ केटलर ने औरंगजेब के शासनकाल में अर्थात १६९८ ई. में डच भाषा में लिखी थी। इस व्याकरण ग्रंथ का नाम है, हिन्दुस्तानी ग्रामर। यह पुस्तक फिलहाल उपलब्ध नहीं है किन्तु डेविड मिल द्वारा लैटिन में अनूदित इसके अनुवाद का विस्तृत विश्लेषण डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने अपने एक लेख में की है। यह पुस्तक उन्हें लंदन में मिली थी। (द्रष्टव्य, द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९२८ ई, "हिन्दुस्तानी का सबसे प्राचीन व्याकरण" शीर्षक लेख, पृष्ठ-१९७)। "राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द का हिन्दी ब्याकरण" शीर्षक पुस्तक का सम्पादन करते हुए उसकी प्रस्तावना में डॉ. रामनिरंजन परिमलेन्दु ने लिखा है, "केटेलर के कालखण्ड (१६९८ ई. के पूर्व) में हिन्दी भाषा के लिए "हिन्दुस्तानी" शब्द का ही व्यवहार किया जाता था।" (प्रस्तावना, पृष्ठ-४, प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी)। किन्तु सच यह है कि उसके बाद भी लगभग डेढ़ सौ वर्षों तक हिन्दी-व्याकरण के नाम पर जो व्याकरण-ग्रंथ उपलब्ध हैं वे सबके सब हिन्दुस्तानी के ही हैं। बेंजामिन शुल्जे द्वारा लैटिन भाषा में लिखित और १७४५ ई. में प्रकाशित व्याकरण ग्रंथ का नाम है, "ग्रामेटिका हिन्दोस्तानिका"। जॉन फार्गुसन ने "ए डिक्शनरी आफ द हिन्दुस्तानी लैंग्वेज" के नाम से हिन्दुस्तानी भाषा का शब्दकोश बनाया जो १७७३ ई. में लंदन से प्रकाशित हुआ। इसी पुस्तक में हिन्दुस्तानी भाषा का व्याकरण भी समाविष्ट है। शब्दकोश की भूमिका में फार्गुसन ने कहा था कि हिन्दुस्तानी ही देश अर्थात भारत की सर्वमान्य भाषा है जिसे देश की सभी श्रेणियों और पेशे के लोग, शिक्षित-अशिक्षित, दरबारी और किसान, हिन्दू-मुसलमान समान रूप से

समझते हैं। (द्रष्टव्य, राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द का हिन्दी व्याकरण, सम्पादक, रामनिरंजन परिमलेन्दु, प्रस्तावना, पृष्ठ-६) और जिसे हम हिन्दी साहित्य का पहला इतिहास कहते हैं वह फ्रेंच इतिहासकार गार्सां द तासी का "इस्त्वार द ला लितरेत्युर ऐंदुई ऐंदुस्तानी" नाम से दो खण्डों में प्रकाशित हुआ था। एक खण्ड १८३९ में और दूसरा खण्ड १८४६ में प्रकाशित हुआ था। इसे हिन्दी साहित्य का पहला इतिहास कहा जाता है किन्तु है यह वास्तव में हिन्दुई और हिन्दुस्तानी साहित्य का इतिहास। इसमें हिन्दी और उर्दू (आज के अर्थ में) का अलग-अलग भाषा के अर्थ में भेद नहीं किया गया है।

इससे भी पहले सन् १८०० में ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासनकाल में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज बना। हमारे देश में वास्तव में आधुनिक काल में खुलने वाला यह पहला शिक्षण संस्थान था। इसके पहले कोई विश्वविद्यालय हमारे देश में नहीं खुला था। कलकत्ता विश्वविद्यालय इस देश का पहला आधुनिक विश्वविद्यालय है जिसकी नींव १८५७ में पड़ी थी। फोर्ट विलियम कॉलेज में जिस हिन्दी विभाग के खुलने की चर्चा की जाती है, वह वास्तव में हिन्दुस्तानी विभाग था। जॉन गिलक्रिस्ट की नियुक्ति १८०१ ई. में वास्तव में वहाँ हिन्दुस्तानी के प्रोफेसर के रूप में हुई थी। उनकी व्याकरण की पुस्तक का नाम है, "ए ग्रामर आफ द हिन्दुस्तानी लैंग्वेज", जो १७९० ई. में प्रकाशित हुई थी। उनकी एक और पुस्तक का नाम है, "द स्ट्रेंजर्स ईस्ट इंडिया गाईड टु हिन्दुस्तानी", जो १८०२ में प्रकाशित हुई थी। रोएबक द्वारा लिखित "एन इंग्लिश एण्ड हिन्दुस्तानी डिक्शनरी टू ह्विच इज प्रिफिक्स्ड ए शार्ट ग्रामर आफ हिन्दुस्तानी लैंग्वेज" का प्रकाशन भी कलकत्ता से ही १८०१ ई. में हुआ था। इतना ही नहीं, जॉन शेक्सपियर का "ए ग्रामर आफ द हिन्दुस्तानी लैंग्वेज" का प्रथम संस्करण भी १८१३ ई. में लंदन से प्रकाशित हुआ था। उनकी एक और पुस्तक "एन इंट्रोडक्शन टु द हिन्दुस्तानी लैंग्वेज" भी १८४५ ई. में प्रकाशित हुई थी। विलियम येट्स द्वारा लिखित "इंट्रोडक्शन टु द हिन्दुस्तानी लैंग्वेज", का प्रकाशन कलकत्ता से १८२४ ई. में हुआ था। डंकन फोब्स कृत "हिन्दुस्तानी मैनुअल" १८४५ ई. में लंदन से छपा। ई.बी. इस्टविक लिखित "ए कन्साइज ग्रामर आफ द हिन्दुस्तानी लैंग्वेज" १८४७ ई. में लंदन से प्रकाशित हुआ और मोनियर विलियम्स जैसे प्रसिद्ध विद्वान का भी "रूडिमेंट्स आफ हिन्दुस्तानी ग्रामर" नामक व्याकरण ग्रंथ १८५८ ई. में इंग्लैण्ड से छपा। इसके अलावा इनका "ए प्रेक्टिकल हिन्दुस्तानी ग्रामर" शीर्षक व्याकरण ग्रंथ भी लंदन से १८६२ ई. में प्रकाशित हुआ।

क्या इतने व्याकरण-ग्रंथों, शब्द-कोशों आदि का उल्लेख करने के बाद भी इस बात में कोई संदेह रह जाता है कि उस कालखण्ड में हिन्दुस्तान की आम बोलचाल की भाषा हिन्दुस्तानी ही थी?

फोर्ट विलियम कॉलेज के हिन्दुस्तानी विभाग के पहले प्रोफेसर जॉन गिलक्रिस्ट के अनुसार उस समय हिन्दुस्तानी की तीन शैलियाँ प्रचलित थीं- १. फारसी या दरबारी शैली २. हिन्दुस्तानी शैली और ३. हिन्दवी शैली। गिलक्रिस्ट दरबारी या फारसी शैली को आभिजात्य वर्ग में प्रचलित और दुरूह मानते थे और हिन्दवी शैली को "वल्गर"। उनकी दृष्टि में हिन्दुस्तानी ही "द ग्रेंड पापुलर स्पीच ऑफ हिन्दुस्तान" थी।

आगे चलकर इसी हिन्दुस्तानी की लड़ाई राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द (१८२३-१८९५) ने भी लड़ी। वे अत्यंत सूझ-बूझ वाले व्यक्ति थे। कचहरियों में उस समय फारसी लिपि प्रचलित थी। वे कचहरियों के लिए एक सर्वमान्य भाषा के प्रयोग के पक्षधर थे जिसे उन्होंने "आमफहम और खास पसंद" भाषा कहा है। किन्तु इतिहास में उन्हें खलनायक की तरह चित्रित किया गया है। भारतेन्दु मंडल के लेखकों ने आरोप लगाया कि वे "देवनागरी में खालिस उर्दू" लिखते हैं। सितारेहिंद का खिताब मिलने पर उन्हें अँग्रेजों का चापलूस कहा गया जबकि भारतेन्दु ने स्वयं लार्ड रिपन की प्रशंसा में "रिपनाष्टक" लिखा।

पता नहीं, गाँधी जी को हिन्दुस्तानी के इस इतिहास की जानकारी थी या नहीं, किन्तु अपने अनुभवों से वे भली-भाँति समझ चुके थे कि इस देश की एकता को कायम रखने में हिन्दुस्तानी बड़ी भूमिका अदा कर सकती है और इसी में निर्विवाद रूप से इस देश की राष्ट्रभाषा बनने की क्षमता है।

उनके प्रयास से १९२५ में सम्पन्न हुए काँग्रेस के कानपुर अधिवेशन में प्रस्ताव पास हुआ कि उस तिथि से काँग्रेस की सारी कार्यवाहियाँ हिन्दुस्तानी में होंगी। गाँधीजी ने हिन्दुस्तान के नेताओं को हिन्दी बोलना सिखाया। हिन्दी भाषा के स्वरूप की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा है, "हिन्दी भाषा मैं उसे कहता हूँ, जिसे उत्तर में हिन्दू और मुसलमान बोलते हैं और देवनागरी या फारसी (उर्दू) लिपि में लिखते हैं। ऐसी दलील दी जाती है कि हिन्दी और उर्दू दो अलग-अलग भाषाएँ हैं। यह दलील सही नहीं है। उत्तर भारत में मुसलमान और हिन्दू एक ही भाषा बोलते हैं। भेद पढ़े-लिखे लोगों ने डाला है...। मैं उत्तर में रहा हूँ, हिन्दू मुसलमानों के साथ खूब मिला-जुला हूँ और मेरा हिन्दी भाषा का ज्ञान बहुत कम होने पर भी मुझे उन लोगों के साथ व्यवहार रखने में जरा भी कठिनाई नहीं हुई है। जिस भाषा को उत्तरी भारत में आम लोग बोलते हैं, उसे चाहे उर्दू कहें चाहे हिन्दी, दोनों एक ही भाषा की सूचक है। यदि उसे फारसी लिपि में लिखें तो वह उर्दू भाषा के नाम से पहचानी जाएगी और नागरी में लिखें तो वह हिन्दी कहलाएगी।"

राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन से इसी मुद्दे को लेकर उनका विवाद चला और लम्बे पत्राचार के बाद हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष पद से उन्हें त्यागपत्र देना पड़ा। इन सारे विवादों के पीछे की राजनीति का विश्लेषण करते हुए काका साहब कालेलकर ने लिखा है, "हिन्दी का प्रचार करते हम इतना देख सके कि, हिन्दी साहित्य सम्मेलन को उर्दू से लड़कर हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना है और गाँधी जी को तो उर्दू से जरूरी समझौता करके हिन्दू-मुस्लिमों की सम्मिलित शक्ति के द्वारा अँग्रेजी को हटाकर उस स्थान पर हिन्दी को बिठाना था। इन दो दृष्टियों के बीच जो खींचातानी चली, वही है गाँधीयुग के राष्ट्रभाषा प्रचार के इतिहास का सार।"

खेद है कि संविधान सभा में होने वाली बहस के पहले ही गाँधी जी की हत्या हो गई। देश का विभाजन भी हो गया था और पाकिस्तान ने अपने देश की राष्ट्रभाषा उर्दू को घोषित कर दिया था। इन परिस्थितियों का गम्भीर प्रभाव संविधान सभा की बहसों और होने वाले निर्णयों पर पड़ा। हिन्दुस्तानी और हिन्दी को लेकर सदन दो हिस्सों मे बँट गया। गाँधी जी के निष्ठावान अनुयायी जवाहरलाल नेहरू, मौलाना अबुल कलाम आजाद सहित दक्षिण के डॉ. पी. सुब्बारायन, टी.टी. कृष्णामाचारी, टी.ए. रामलिंगम चेट्टियार, एन.जी. रंगा, एन. गोपालस्वामी आयंगर, एस.बी. कृष्णमूर्ति राव, काजी सैयद करीमुद्दीन, जी. दुर्गाबाई आदि ने हिन्दुस्तानी का समर्थन किया तो दूसरी ओर राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन, सेठ गोबिन्द दास, रविशंकर शुक्ल, अलगूराय शास्त्री, सम्पूर्णानंद, के.एम. मुँशी आदि ने हिन्दी का। बहुमत हिन्दी के पक्ष में था और संविधान सभा ने प्रचंड विरोध के बावजूद देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी को संघ की राजभाषा तय कर दिया।

आज इतने वर्षों बाद जब हम संविधान सभा के उक्त निर्णय के प्रभाव का मूल्यांकन करते हैं तो हमें लगता है कि हिन्दी को इसके लिए बड़ी कीमत चुकानी पड़ी है। दक्षिण के हिन्दी विरोध का मुख्य कारण यही है। जो लोग पहले गाँधी जी के प्रभाव में आकर हिन्दी का प्रचार कर रहे थे वे ही बाद में हिन्दी के विरोधी हो गए और हिन्दी विरोध का नेतृत्व करने लगे। इतना ही नहीं, हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा न देकर उसे राजभाषा तक सीमित करने के पीछे भी अहिन्दी भाषी सदस्यों की यही नाराजगी काम कर रही थी। संविधान सभा में होने वाली बहसों को पलटकर देखने पर तो यही लगता है। हमें नहीं भूलना चाहिए कि गाँधी जी के प्रभाव और प्रयास का ही फल था कि दक्षिण में व्यापक रूप से हिन्दी का प्रचार हुआ। चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने मद्रास प्रेसीडेंसी का मुख्यमंत्री रहते हुए १९३७ में ही दक्षिण में हिन्दी अनिवार्य कर दिया था। विरोध होने पर विरोधियों के लिए क्रिमिनल लॉ लागू करने में भी संकोच नहीं किया और हजारों विरोधियों को जेल में डाल

दिया था। चक्रवर्ती राजगोपालाचारी गाँधी जी के समधी थे। गाँधी जी के सुपुत्र देवदास गाँधी की शादी सी. राजगोपालाचारी की बेटी से उसी दौर में हुई थी जब देवदास गाँधी हिन्दी का प्रचार करने दक्षिण गए थे।

ऐसी दशा में गाँधीजी के प्रस्ताव के विपरीत यदि कोई प्रस्ताव आता है तो दक्षिण भारत के गाँधी जी के अनुयायियों से भला समर्थन की उम्मीद कैसे की जा सकती है?

गाँधी जी की प्रख्यात अनुयायी श्रीमती जी. दुर्गाबाई, जिनकी कानून की शिक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से हुई थी, मद्रास हाई कोर्ट की वकील थीं, आन्ध्र महिला सभा की सचिव थीं और जिन्होंने कोकानाड़ा में महिला हिन्दी विद्यालय की स्थापना की थी, ने तो सदन में इस ओर स्पष्ट संकेत किया था। "श्रीमान्, भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी के अतिरिक्त, जो हिन्दी तथा उर्दू का योग है, कुछ और नहीं होनी चाहिए और कुछ हो भी नहीं सकती, कदाचित टंडन जी, सेठ गोविन्द दास जी आदि नहीं जानते और उन्हें पता नहीं है कि दक्षिण में हिन्दी भाषा का कितना प्रबल विरोध हुआ है। विरोधी यह समझते हैं, शायद ठीक ही समझते हैं कि यह हिन्दी के पक्ष का आन्दोलन प्रान्तीय भाषाओं की जड़ खोदता है और यह प्रान्तीय भाषाओं और प्रान्तीय संस्कृति के विकास के लिए गम्भीर बाधा है।

अब इसका परिणाम क्या है? अब मुझे आश्चर्य है कि हमने इस शताब्दी के आरम्भ में जिस जोश के साथ हिन्दी अपनायी थी, उसके विरुद्ध इतना आन्दोलन हो रहा है। श्रीमान्, अहिन्दी भाषी लोगों की भावनाओं में कटुता लाने का कारण आपका यह दृष्टिकोण है कि आप शुद्धत: एक प्रान्तीय भाषा को राष्ट्रीय रूप देना चाहते हैं। मुझे भय है कि इससे निश्चय ही उनके भावों और भावनाओं पर बुरा प्रभाव पड़ेगा, जिन्होंने पहले ही देवनागरी लिपि में हिन्दी को स्वीकार कर लिया है। संक्षेप में उनके इस अत्यधिक और कुप्रयुक्त प्रचार के कारण मेरे समान लोगों का समर्थन भी अब प्राप्त नहीं रहा जो हिन्दी जानते हैं और हिन्दी के समर्थक हैं। मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि राष्ट्रीय एकता के हितार्थ हिन्दुस्तानी ही भारत की राष्ट्रभाषा बन सकती है।"

इसी तरह संविधान सभा में बहस करते हुए काजी सैयद करीमुद्दीन ने कहा, "सन् १९४७ में इंडियन नेशनल काँग्रेस ने यह कबूल किया था कि हिन्दुस्तान की जबान हिन्दुस्तानी होगी जिसके दोनों उर्दू और देवनागरी रसमुलखत होंगे लेकिन आज यह फरमाया जाता है कि सिर्फ देवनागरी रसमुलखत होगा। उसकी वजह यह है जैसे कि मैं बता चुका हूँ सन् ४७ के पार्टीशन के बाद पाकिस्तान ने अपनी नेशनल ज़बान उर्दू होने का ऐलान किया और उसी के रिएक्शन की वजह से आज यहाँ हिन्दुस्तान में हिन्दी और देवनागरी रसमुलखत मुकर्रर किया जा रहा है।" और अगले दिन अर्थात १४ सितम्बर को मौलाना अबुल कलाम आजाद ने कहा, "आज से तकरीबन पच्चीस वर्ष पहले जब यह सवाल आल इंडिया काँग्रेस कमेटी के सामने आया था तो मेरी ही तजबीज से उसने हिन्दुस्तानी का नाम इख्तयार किया था। मकसद् यह था कि ज़बान के बारे में तंगख्याली से काम न लें। ज्यादा से ज्यादा वसीह मैदान पैदा कर दें। हिन्दुस्तानी का लफ्ज इख्तयार करके हमने हिन्दी और उर्दू के इख्तेलाफ को भी दूर कर दिया था। क्योंकि जब आसान उर्दू और आसान हिन्दी बोलने और लिखने की कोशिश की जाती है तो दोनों मिलकर एक जबान हो जाती हैं। तब उर्दू और हिन्दी का फर्क बाकी नहीं रहता।" मोहम्मद इस्माईल ने गाँधी जी को उद्धृत करते हुए कहा कि "भारत के करोड़ों ग्रामीणों को पुस्तकों से कोई मतलब नहीं है। वे हिन्दुस्तानी बोलते हैं जिसे मुस्लिम उर्दू लिपि में लिखते हैं तथा हिन्दू उर्दू लिपि या नागरी लिपि में लिखते हैं। अतएव मेरे और आप जैसे लोगों का कर्तव्य है कि दोनो लिपियों को सीखें।"

कथा सम्राट मुँशी प्रेमचंद ने "साहित्य का उद्देश्य" नामक अपने मशहूर निबंध मे लिखा है, "उर्दू वह हिन्दुस्तानी जबान है जिसमें फारसी-अरबी के लब्ज ज्यादा हों, उसी तरह हिन्दी वह हिन्दुस्तानी है जिसमें संस्कृत के शब्द ज्यादा हों, लेकिन जिस तरह अँग्रेजी में चाहे लैटिन या ग्रीक शब्द अधिक हों या ऐंग्लोसेक्सन, दोनों ही अँग्रेजी है, उसी भाँति हिन्दुस्तानी भी अन्य भाषाओं के शब्दों के मिल जाने से कोई भिन्न भाषा नहीं हो जाती।"

हिन्दी और हिन्दुस्तानी को लेकर गाँधी जी और राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन के बीच लम्बा पत्र व्यवहार हुआ था जिसमें गाँधी जी ने राजर्षि टण्डन को अपना हिन्दी का जिद् छोड़ने का बार-बार आग्रह किया था। किन्तु राजर्षि टण्डन अपने हिन्दी के एजेन्डे से चिपके रहे और अंतत: गाँधी जी को इसी मुद्दे को लेकर हिन्दी साहित्य सम्मेलन से बहुत ही दुखी मन से त्याग पत्र देना पड़ा। लम्बे पत्राचार के बाद अन्तत: सेवाग्राम से २५ जुलाई १९४५ को गाँधी जी ने टण्डन जी को लिखा, "आप का ता. ११.७.४५ का पत्र मिला। मैंने दो बार पढ़ा। बाद में भाई किशोरीलाल को दिया। वे स्वतंत्र विचारक हैं। आप जानते होंगे। उन्होंने जो लिखा है सो भी भेजता हूँ। मैं तो इतना ही कहूँगा, जहाँ तक हो सका मैं आप के प्रेम के अधीन रहा हूँ। अब समय आ गया है कि वही प्रेम मुझे आप से वियोग कराएगा। मैं अपनी बात नहीं समझा सका हूँ। यही पत्र आप सम्मेलन की स्थाई समिति के पास रखें। मेरा ख्याल है कि सम्मेलन ने मेरी हिन्दी की व्याख्या अपनायी नहीं है। अब तो मेरे विचार इसी दिशा में आगे बढ़े हैं। राष्ट्रभाषा की मेरी व्याख्या में हिन्दी और उर्दू लिपि और दोनों शैलियों का ज्ञान आता है। ऐसा होने से ही दोनों का समन्वय होने का है तो हो जाएगा। मुझे डर है कि मेरी यह बात सम्मेलन को चुभेगी। इसलिए मेरा इस्तीफा कबूल किया जाय। हिन्दुस्तानी प्रचार सभा का कठिन काम करते हुए मैं हिन्दी की सेवा करूँगा और उर्दू की भी।"

वैसे भी हिन्दुस्तानी कहने से जिस तरह व्यापक राष्ट्रीयता और सामाजिक समरसता का बोध होता है उस तरह हिन्दी कहने से नहीं। जैसे पंजाबियों की पंजाबी, मराठियों की मराठी, बंगालियों की बंगाली, तमिलों की तमिल, गुजरातियों की गुजराती का बोध होता है उसी तरह हिन्दुस्तानी कहने से हिन्दुस्तानियों की हिन्दुस्तानी का बोध होता है। इस शब्द में न तो क्षेत्रीयता की गंध है और न जाति-धर्म की संकीर्णता की। यदि हिन्दुस्तानी को राजभाषा के रूप में स्वीकृति मिल गई होती तो उर्दू का झगड़ा सदा-सदा के लिए खत्म हो गया होता। निश्चित रूप से हिन्दुस्तानी की जगह हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किया जाना एक बड़ी ऐतिहासिक भूल थी और इतिहास की इस भूल का भयंकर दुष्परिणाम आज भी हम झेल रहे हैं। किसी ने कहा है,

"तारीख की नजरों ने वो दौर भी देखा है / लमहे ने खता की थी सदियों ने सजा पाई।"

इस ऐतिहासिक भूल का परिणाम हम आज भी भुगत रहे हैं। हिन्दी आज भी दक्षिण का ही नहीं, भारत के दूसरे हिस्से के लोगों का भी विरोध झेल रही है। बल्कि आज तो हिन्दी वाले ही हिन्दी का सबसे बड़े दुश्मन बन बैठे हैं। वे हिन्दी की कई महत्वपूर्ण बोलियों को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल करने की माँग करके हिन्दी परिवार को ही बाँटने पर आमादा हैं।

बहरहाल, अब तो संविधान ने देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली "हिन्दी" को संघ की राजभाषा बनाकर हिन्दी और हिन्दुस्तानी के विवाद पर विराम लगा दिया है किन्तु यदि हिन्दी को उसका वाजिब स्थान दिलाना है तो हमें आज भी गाँधी के दिखाए मार्ग पर ही चलना होगा और "हिन्दी" शब्द में "हिन्दुस्तानी" का अर्थ भरना होगा।

धरती खामोश थी

संजय श्रीवास्तव

धरती खामोश थी,
जब तुम पेड़ काट रहे थे
वो तब भी खामोश थी
जब तुम उसे चीरकर
पानी निकाल रहे थे,
वो अब भी खामोश है
तुम्हे विलाप करते देखकर
चिल्लाओ गला फाड़कर
देखो जरा आँखे निकालकर
किस तरह उर्वर धरती
को बंजर तुमने बनाया
आज उसने एक कतरा
के लिए तुमको तरसाया
हे स्वार्थी !
अब तो सँभल जाओ
अपने कृत्य को न दोहराओ
वरना इससे भी भयंकर
दास्तान होगा !
धरती का रुप
शायद रेगिस्तान होगा !
पानी का मोल
तू समझ तो जायेगा,
बिडम्बना ये है
किसी कीमत पर भी
पानी नही पायेगा ।

सुसंस्कार की कठिन डगर पर

डॉ. सीतेश आलोक

भारतीय संस्कृति की चर्चा हम सब आए दिन सुनते रहते हैं। कभी मंचों से, तो कभी चाय-वार्ताओं में या घरों की बैठक में। किन्तु दुर्भाग्य यह है कि हममें से अधिकांश यह नहीं जानते कि हमारी संस्कृति क्या है। इस अज्ञान के पीछे, हमारी सोच की जड़ों में बैठा वह निर्मम अतीत है, जो आठ शताब्दी लम्बी देश की दासता के रूप में हमें भोगना पड़ा। वास्तव में, विदेशी शासन ने कभी हमें यह जानने का अवसर ही नहीं दिया कि हम क्या हैं और हमारी संस्कृति क्या है, हमारी विचारधारा क्या है!

और फिर, लम्बी दासता के बाद देश को मिला भी तो एक ऐसा शासन, जिसने हम पर एक नितान्त नई जीवन-शैली थोपी - बिना सोचे कि तब हमारी पहली अथवा मूलभूत आवश्यकता यह थी कि पहले विदेशी शासनकाल में मिले हमारे ज़ख़्मों पर मरहम लगाया जाए और हमारा खोया हुआ आत्मविश्वास तथा आत्मसम्मान हमें लौटाया जाए। हमें हमारी वास्तविक पहचान दी जाए। हमारे वैभव और ज्ञान का परिचय देकर हमें बताया जाए कि हम कभी सशक्त तथा समर्थ भी थे, कि हम पुनः कमर कसकर उठें और वह सब प्राप्त करें जो विश्व के अन्य देश हमारी दासता की अवधि में प्राप्त कर चुके थे।

सर्वमान्य वास्तविकता यह है कि कोई भी शासक देश, गुलाम देश के नागरिकों को तब तक पूरी तरह गुलाम नहीं बना सकता, जब तक वह उनसे उनका आत्म-सम्मान न छीन ले, उनका आत्म-विश्वास न नष्ट कर दे। भारत के विदेशी शासकों ने यही किया। आते ही उन्होंने हमारी संस्कृति को नष्ट किया। हमें दाने-दाने के लिए तरसाकर, कभी इतना अवकाश ही नहीं दिया कि हम अपनी सांस्कृतिक विरासत के विषय में सोचें अथवा उसे याद करें। हमारी पुस्तकें और हमारे ज्ञान के केन्द्र नष्ट कर दिए गए थे। पुस्तकालय जला दिए गए और समाज को कर्म-अकर्म तथा सामर्थ्य का ज्ञान देने वाले गुरुकुल, जड़ से उखाड़ फेंके गए। भूखा-नंगा समाज अपने बच्चों को ज्ञान के लिए भेजता भी तो कहाँ? गुरुजन ज्ञान की सम्पदा बचाते भी तो कैसे, जब न तो उन्हें राजश्रय मिल पाता था और न घर-घर भिक्षा माँगकर भी गुरुकुल को चलाने वाले जिज्ञासु विद्यार्थी थे। हमारी मानसिकता में कूट-कूट कर सैकड़ों वर्ष तक यही भरा गया था कि "तुम मूर्ख, भटके हुए कुमार्गी, तथा मानव-रूपी पशु हो।" फिर नये शासकों के शासन ने हमें सुसंस्कृत करने के नाम पर अपनी भाषा दी - इस परम मंत्र के साथ कि तुम्हारा सब कुछ निम्न कोटि का है। अपनी भाषा के कुछ शब्द - जैसे "कम हियर", "गेट आउट", "सिट डाउन", "कीप क्वाएट" - सिखाए और कोट पहनाकर, गले में टाई लटका दी और सिर पर रखने को एक टोप दे दिया। इस परिधान के साथ, महीने में तीन-चार रुपये वेतन पाकर अँग्रेज़ों का भारतीय नौकर अपने को किसी बादशाह से कम नहीं समझता था। इसमें वह सपरिवार पेट भर खाना खा सकता था और अपने भूखे नंगे पड़ोसियों के बीच "गुडमार्निंग", "डैम-फ़ूल" और "गेट आउट" जैसे शब्द बोलकर सम्मान पा जाता था। सभी लोग उसके भाग्य की सराहना करते थे और उसके-जैसी नौकरी पाने के लिए, अँग्रेज़ी सीखने के लिए दौड़ पड़ते थे। जल्दी ही वे "संडे-मंडे" सीखने और बोलने लगे और अपने देवताओं को पूजने लगे कि हमें "साहब" के यहाँ नौकरी दिलवा दो, प्रभु। मैकाले की रणनीति व्यापक प्रभाव डालती जा रही थी। इतना पर्याप्त था इन्सान को पालतू कुत्ता बनाने के लिए।

ऐसी दयनीय स्थिति में बस धर्म ही उनका आसरा रह गया था - वह धर्म जिसकी महत्ता के विषय में वे अपने पुरखों से सुनते आए थे। उन्हें धर्म पर विश्वास था। बिना यह जाने अथवा समझे कि धर्म का अर्थ क्या है, धर्म का महत्त्व क्या है, वे अपने भगवान को पुकारते रहते थे। किसी न किसी रूप में उसकी पूजा करते रहते थे।

नित नई विपत्तियाँ झेलते हुए भी उन्हें विश्वास था कि एक दिन उनका भगवान ही उन्हें बचाएगा। और जो भी, जैसी भी विपत्ति वह झेल रहे हैं, वह उनके किसी पूर्व जन्म के कर्मों का फल है। वह एक दिन अवश्य दूर हो जाएगी। सब पाप उसी भगवान की कृपा से कट जाएँगे, बस भगवान के आगे रोते रहो, गिड़गिडाते रहो। वह एक दिन अवश्य ही सारे दुखों का अंत करेगा।

धर्म के नाम पर बस यहीं तक उनका ज्ञान था। यही उन्हें अपने पूर्वजों से संस्कार में मिला था। हाँ, उस समय यह ज्ञान और यह संस्कार देने वाले ब्राह्मण भी थे जो अन्य सभी की अपेक्षा कुछ अच्छी स्थिति में थे। उन्होंने अन्य सभी को धर्म का एक और अर्थ समझाया - वह यह कि ब्राह्मण पूज्य होता है, उसे दान देते रहने से भी पापों से मुक्ति मिलती है और सुखों का मार्ग खुलता है, यद्यपि वे स्वयं ही नहीं जानते थे ब्राह्मण होने का अर्थ क्या है? वास्तव में ब्राह्मण को स्वयं ही दान माँगने का अधिकार नहीं होता। उसका पहला कर्तव्य यह होता है कि वह बारम्बार वेदों का अध्ययन करता रहे और समाज में शिक्षा का प्रचार-प्रसार करता रहे। उस समय तो ब्राह्मणों को यह भी ज्ञात नहीं रहा था कि वेद कितने हैं और उनमें ऐसा क्या है जो निरन्तर उन्हें पढ़ते रहने का विधान है।

हमें अज्ञानता एवं अपसंस्कृति देकर तत्कालीन शासन का प्रभाव जड़ें पकड़ता रहा। उन्हीं दिनों, विश्व में औद्योगिक क्रान्ति हुई। देशभर में रेल चली, कहीं मोटर गाड़ियाँ भी आईं, बिजली भी बनने लगी। देश में कभी-कभार सिर उठाने वाली चिनगारियों को दबाते रहने के लिए पुलिस दल भी बनने लगे। युद्ध के लिए सेनाएँ भी आवश्यक होने लगीं। इस प्रकार देश के भूखे नंगों को भी गाहे-बगाहे कुछ रोज़गार मिलने लगे। किन्तु उनकी संख्या देश की भूखी एवं बेकार जनसंख्या से बहुत, बहुत कम थी। इंगलैण्ड के कुछ भागों में मिलों के लिए कच्चा माल जुटाने के लिए भी भारत के किसानों को भी कुछ दायित्व मिला।

किन्तु सब जगह शर्त यह भी थी कि उन कर्मचारियों को पूर्णतया अँग्रेजी शासन के हित में काम करना होगा। अधिकांश किसानों के लिए भी प्रतिबंध यही था कि वे केवल और केवल वही फ़सल उगाएँगे जिसकी माँग इंग्लैण्ड में है। कुछ संदर्भ सर्वविदित हैं कि भारत में उगाया हुआ कपास, मैनचैस्टर की कपड़ा मिलों के लिए ही भेजा जाता था और वह भी सरकार द्वारा तय की हुई क़ीमत पर और अनेकानेक किसान विवश थे केवल नील की खेती करने के लिए, जो गोरे साहबों के कपड़े चमकाने के लिए भेजा जाता था। कुछ किसानों को यह आदेश था कि चीन को निर्यात के लिए अफ़ीम की खेती करें।

संयोग है कि बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में होने वाले दो विश्व युद्धों ने भारत में अँग्रेज़ी शासन को कुछ शिथिल किया और उसके साथ ही हमारे स्वतंत्रता आंदोलन ने फिर ज़ोर पकड़ा। अँग्रेज़ी शासन के विरुद्ध हिन्दुओं से कंधे से कंधा मिलाकर लड़ने वाले मुसलमान, कुछ दशक बाद, देश की स्वतंत्रता की भनक पाते ही, इस धरती पर कब्ज़ा करने के लिए बेचैन होने लगे। पहले उनके मन में यह तर्क था कि अँग्रेज़ों ने देश का शासन मुसलमानों से छीना था, अतः लौटते समय उन्हें आज़ाद भारत की बागडोर मुसलमानों को ही सौंपनी चाहिए। उन्हें भय सताने लगा कि हिन्दुओं पर पाँच शताब्दियों तक शासन करने के बाद इस हिन्दू-बहुल भूमि पर अब हिन्दुओं का शासन हो जाएगा। विश्वभर में प्रजातंत्र आ चुका था और कोई सम्भावना नहीं थी कि देश छोड़ते समय अँग्रेज़ भारत का शासन मुसलमानों को सौंप कर जाएँ। अतः उन्होंने भारत के विभाजन और अलग पाकिस्तान का हठ ठान लिया।

तत्कालीन क्रान्तिकाल में गाँधी और नेहरू भारत में नेता के रूप में उभरकर आ चुके थे। उन्होंने विभाजन रोकने के नाम पर मुसलमानों को बहुत छूट दी। इस्लाम की "महानता" के गुण गाए। उन्होंने हिन्दुओं को भी बहुत दबाया और समझाया। हिन्दुओं की उदारता और महानता के गुण गाते हुए यहाँ तक कहा कि "अगर मुसलमान हमें मार भी डालें तो हमें शान्त रहना चाहिए। हँसते-हँसते अहिंसापूर्वक जीवन बलिदान कर देना ही हमारा धर्म हमें सिखाता है। यही हमारी संस्कृति है।"

किन्तु मुसलमान नेता जानते थे कि विश्व में पसरते प्रजातंत्र में उनका भारत में सत्ता पाना सम्भव नहीं होगा। अतः विभाजन हुआ और पाकिस्तान बना। किन्तु गाँधी-नेहरू प्रभाव के चलते भारत में करोड़ों मुसलमान बसे रहे। उन्हें यहाँ टिके रहने की ही नहीं, हर प्रकार से अपनी शर्तों पर रहने की पूरी छूट दी गई। जहाँ पाकिस्तान इस्लामी राष्ट्र बना, वहाँ भारत को प्रजा-बहुल हिन्दू राष्ट्र नहीं बनने दिया गया।

यह भी देश का दुर्भाग्य रहा कि जनता में सरदार पटेल का व्यापक प्रभाव होते हुए भी, गाँधी जी के नेहरू-प्रेम के कारण, देश की सत्ता नेहरू के हाथों में चली गई। देश का दुर्भाग्य कि इंग्लैण्ड-पढ़े, अमीरज़ादे नेहरू को भारतीय संस्कृति का कोई ज्ञान नहीं था। जो कुछ था वह मूलरूप से अँग्रेज़ों द्वारा समझी और लिखी पुस्तकों के आधार पर ही था। और यह तो सर्वविदित है कि अँग्रेज़ों के आकलन में भारत "सँपेरों और जादू-टोना करने वालों का" देश था। कश्मीर में जन्में और वहाँ के मुस्लिम-बहुल समाज में पले-बढ़े नेहरू को भारतीय संस्कृति के प्रति कोई लगाव भी नहीं था। वे बड़े गर्व से कहते रहते थे - "मैं शिक्षा से ईसाई, संस्कार से मुसलमान और मात्र संयोग से हिन्दू हूँ।"

देश का एक और दुर्भाग्य, बीसवीं सदी के तीसरे दशक में ही जन्म ले चुका था। रूस और चीन में पनपे और विकसित हुए मार्क्सवाद का बीज भारत में पहुँच चुका था। उसके पास ग़रीबों को लुभाने वाला, मनमोहक, अमीर-विरोधी नारा था। उसे संस्कृति से कोई लेना-देना न कभी था और न आज है। वह यह मूल मंत्र लेकर आया कि संसार में बस अमीर और ग़रीब हैं और देश की सम्पत्ति पर दोनों का समान अधिकार होना चाहिए। अगर ग़रीब एकजुट हो जाएँ तो वे अमीरों से अपना अधिकार छीन सकते हैं।

उनका यह मंत्र अनेक ग़रीब-बहुल देशों में सफल होता रहा था। उन्हें यह देखकर आश्चर्य भी हुआ और आघात भी लगा कि भारत में उनकी विचारधारा आशा के अनुकूल नहीं फैल रही थी। बहुत विचार-विमर्श और माथा-पच्ची के बाद उन्हें ज्ञात हुआ कि यहाँ का ग़रीब अपने संस्कार से भाग्यवादी है। वह मानता है कि "होइए वही जो राम रचि रखा।" उन्हें सोचना पड़ा कि यह राम कौन है? यहाँ अपनी पकड़ बनाने के लिए उन्हें ग़रीबों का यह विश्वास तोड़ना पड़ेगा। इस निश्चय से उन्होंने रामकथा का अध्ययन किया और अपने विद्वानों से कहा - "जैसे भी हो, राम की छवि बदलो... घटनाओं की नयी व्याख्या करो, नयी रामायण लिखो... जैसे भी हो राम को खलनायक सिद्ध करो... रावण को महान दिखाओ। वेद पढ़ो, मनुस्मृति पढ़ो और सिद्ध करो कि यहाँ कुछ लोगों के साथ हमेशा अन्याय हुए। बस इसी कारण वे ग़रीब हैं, अपमानित हैं, और उपेक्षित हैं।"

उन्होंने जातिवाद को तूल दिया। ग़ुलामी की शताब्दियों में उपजी अपसंस्कृति को ही भारत की मूल संस्कृति के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने पाया कि मुलसमान भी, अल्पसंख्यक होने के कारण और अपनी साम्प्रदायिक सोच के कारण, हिन्दुओं से घृणा करते हैं। उन्हें पता लगा कि हिन्दू नारी पर, गुलामी के काल में, बड़े अत्याचार हुए और स्वयं अत्याचार का शिकार हिन्दू उनकी रक्षा नहीं कर पाता था। इस कारण महिला समाज बड़ा दुखी एवं असंतुष्ट है। यह देखकर मार्क्सवाद ने नारी समाज और मुसलमानों को भी "दलित" कहकर, बहुसंख्यक हिन्दू के विरुद्ध भड़काया।

नयी-नयी रामकथाएँ जन्म लेने लगीं - एक का तो शीर्षक ही था "रामायण विष वृक्षम्।" सभी के नये निष्कर्ष... कि राम खलनायक थे, उन्होंने सीता की अग्नि परीक्षा ली... किन्तु स्वयं कोई परीक्षा नहीं दी। उन्होंने निर्दोष सीता को वनवास दे दिया। राम के अनेक पत्नियाँ थीं। राम, सोना पाने के लालच में स्वर्णमृग को पकड़ने के लिए दौड़े थे।

और यह भी कि रावण बहुत अच्छा आदमी था। सीता, वन के कष्टमय जीवन से ऊबकर रावण के साथ अपनी मर्ज़ी से भाग गई थीं। रावण के राज में सीता एक वर्ष तक सुरक्षित रहीं। रावण अपनी बहन के अपमान का बदला लेने के लिए सीता को ले गया था... आदि। उन्होंने इस प्रकार की मान्यताएँ फैलाने में सहयोग देने

वाले लेखकों, नाटककारों, लोकप्रिय कलाकारों को विदेश में बुलाकर धन एवं अलंकरणों से सम्मानित किया। बच्चों के लिए चिकने कागज़ पर रूसी साहित्य सस्ते दामों पर वितरित किया गया और इस प्रकार नयी पीढ़ी के मन में विष बीज बोने का काम बड़े धैर्य के साथ होता रहा। इसमें तत्कालीन प्रशासन का मौन सहयोग उनके साथ रहा। हाँ, इस दुष्प्रचार से उन्होंने मुसलमानों को दूर ही रखा, क्योंकि वे जानते थे कि मुसलमान को उसकी विचारधारा घुट्टी में पिलाई जाती है। उसके सोच को किसी भी प्रकार बदला नहीं जा सकता। उन्होंने मुसलमानों को यही समझाया कि हिन्दू उससे घृणा करते हैं और उनके राज में उन्हें न कभी सम्मान मिलेगा और न सुख।

इस प्रकार वामपंथ ने अपने प्रभाव क्षेत्र में ग़रीब के साथ ही मुसलमानों और नारी समाज को और नव साक्षरों को भी जोड़कर अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ाया।

ऐसे प्रभावों-दुष्प्रभावों के चलते देश का जनमानस कभी सार्थक दिशा नहीं पा सका। देश के नागरिकों को कर्म-अकर्म और सत्कर्म-दुष्कर्म का ज्ञान देने वालों का सर्वथा अकाल रहा। स्वतंत्रता के बाद प्रशासन ने देश को आर्थिक विकास की योजनाएँ तो दीं किन्तु व्यापक दुष्प्रभावों को रोककर सत्कर्म की ओर प्रेरित करने वाली कोई पहल नहीं की। इसके विपरीत ऐसा सद्ज्ञान देने वाली सभी संस्थाओं को पोंगापंथी और पुरातनपंथी कहकर उनका विरोध ही किया, उन्हें हतोत्साहित ही किया। परिणाम यह है कि आज का युवा, देश की यत्किंचित समृद्धि में अपना हिस्सा माँगना सीख गया है। उसके लिए लड़ना सीख गया है। अधिक से अधिक पा लेने के लिए छीनना और लूटना सीख गया है। किन्तु श्रम और ईमानदारी का महत्त्व नहीं सीख पाया। धैर्य और उदारमन से देना नहीं सीख पाया। वह चिल्लाकर कहता था कि देश में इतने सारे धनकुबेर हैं, वे कौन-सी मेहनत करते हैं? उन्होंने और उनके पुरखों ने हमें निरन्तर लूट कर ही अपनी सारी सम्पत्ति पाई है।

देश में प्रजातंत्र के बहाने भी, सुसंस्कारों के अभाव में, बड़ा अनाचार हुआ है। सुसंस्कारों के अभाव में प्रजातंत्र स्वयं ही लूट का एक बहुत बड़ा साधन बन गया है, जिसके सामने संविधान और न्यायप्रणाली का प्रभाव भी दम तोड़ देता है। जो भी जनता को धैर्य और परिश्रम का मार्ग दिखाए बिना, तुरन्त धन एवं सुविधाएँ देने का सपना दिखा दे - वही उनका नेता बनता चला जाता है। और एक बार राजनीति में सफल होने का मतलब है - धन, मान-सम्मान और बाहुबल... सब एक साथ प्राप्त हो जाना। आज कोई महिलाओं के लिए आवाज़ उठाकर, कोई ग़रीबों के लिए आँसू बहाकर, कोई मुसलमानों की पीड़ा सुनाकर तो कोई मज़दूर के लिए चीख़-चिल्लाकर नेता बनने का जुगाड़ बैठा रहा है। इसके साथ ही सरकारी नौकरी एक बहुत बड़ा आकर्षण बन गई है, जहाँ पैसा है, सुरक्षा है और पेंशन के साथ मौज ही मौज है। लोग उसके लिए लूटकर या खून करके भी पैसा लगाने को तैयार हैं। लड़की वाले सरकारी नौकरी वाले के लिए बड़ा दहेज़ लिए घूमते रहते हैं। समाज में हर किसी को शार्टकट चाहिए।

यह वातावरण सुसंस्कारों के अभाव में बद से बदतर होता चला गया और आज बहुत तेज़ी से, बहुत-बहुत तेज़ी से बिगड़ता चला जा रहा है। इससे बचने के लिए योजनाबद्ध काम, आज से सत्तर वर्ष से पहले ही प्रारम्भ होना था। परिस्थितियों ने हमें निरन्तर बोझ बनी रहने वाली समस्याएँ ही दीं। उनके प्रभाव स्वरूप ही देश को एक विदेशी नाम मिला - इंडिया। देश को एक अपनी भाषा नहीं मिल पाई।

आज स्थिति में सुधार के लिए आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है, जो कि समय की धारा एवं दिशा को मोड़कर पीछे ले जाने जैसा दुष्कर कार्य है। किन्तु आशा की किरणें अभी शेष हैं। हमारे पास पर्याप्त साधन न सही, दृष्टि है, धैर्य है और मनोबल है।

डॉ. स्नेह ठाकुर का रचना संसार

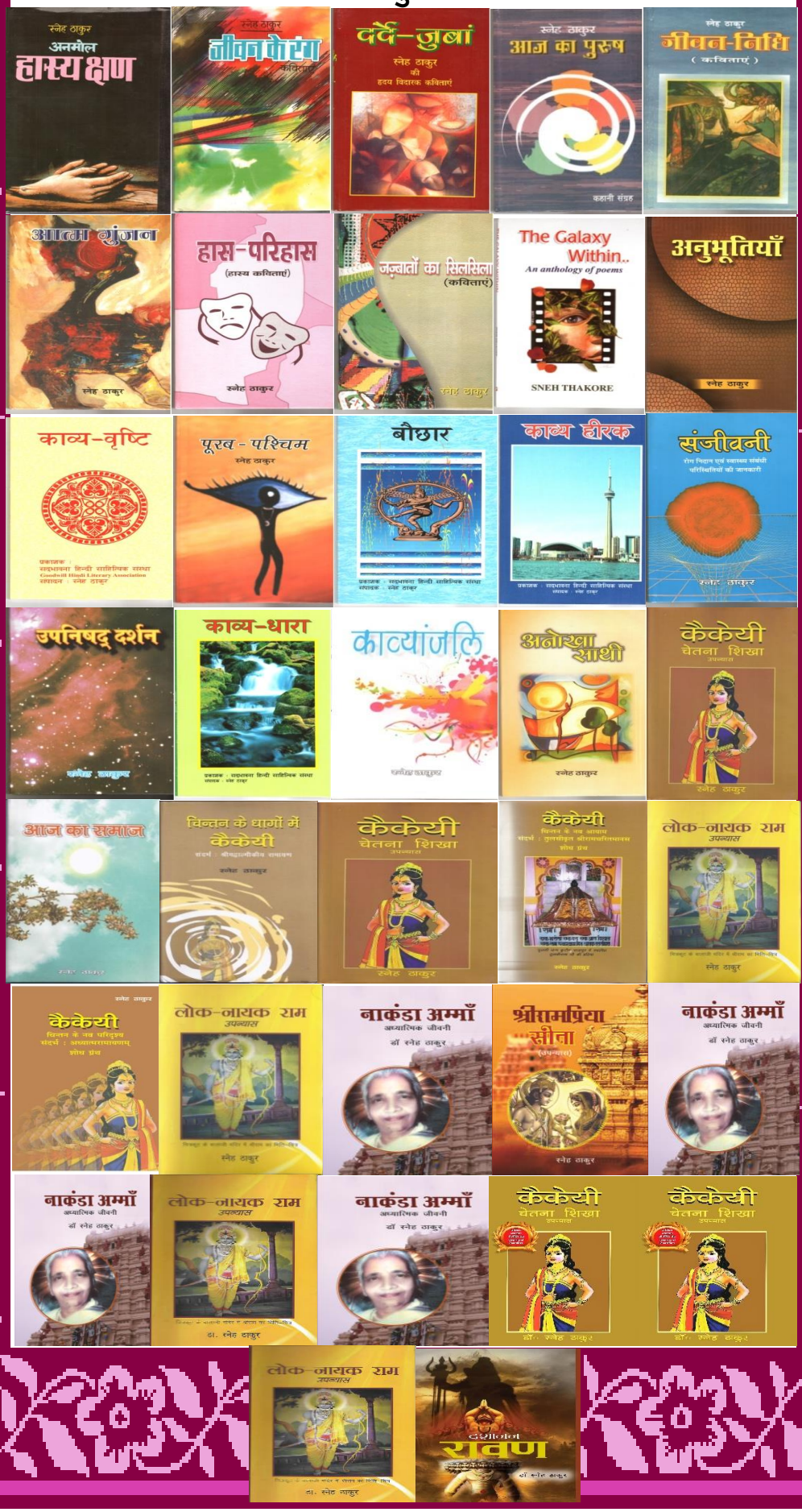

डॉ. स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

दशानन रावण	(उपन्यास)
लोक-नायक राम	(उपन्यास, चतुर्थ संस्करण)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, साहित्य अकादमी म. प्र. अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान, चतुर्थ संस्करण)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, साहित्य अकादमी म. प्र. अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान, तृतीय संस्करण)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी, चतुर्थ संस्करण)
लोक-नायक राम	(उपन्यास, तृतीय संस्करण)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी, तृतीय संस्करण)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी, द्वितीय संस्करण)
श्रीरामप्रिया सीता	(उपन्यास)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी)
लोक-नायक राम	(उपन्यास, द्वितीय संस्करण)
कैकेयी : चिन्तन के नव परिदृश्य - संदर्भ : अध्यात्मरामायण	(शोध-ग्रन्थ)
लोक-नायक राम	(उपन्यास)
कैकेयी : चिन्तन के नव आयाम - संदर्भ : तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस	(शोध-ग्रन्थ)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, साहित्य अकादमी म. प्र. अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान, द्वितीय संस्करण)
चिन्तन के धागों में कैकेयी -	संदर्भ : श्रीमदवाल्मीकीय रामायण (शोध-ग्रन्थ)
आज का समाज	(सामाजिक लेख-संग्रह)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, राष्ट्रपति भवन पुस्तकालय में संग्रहित)
अनोखा साथी	(कहानी-संग्रह)
काव्यांजलि	(काव्य-संग्रह)
काव्य-धारा	(संकलन, सम्पादन, सहभागिता एवं प्रकाशन)
उपनिषद दर्शन	(ईशोपनिषद, दार्शनिक एवं अध्यात्मिक)
संजीवनी	(स्वास्थ्य सम्बन्धी आलेख)
काव्य हीरक	(संकलन, सम्पादन, सहभागिता एवं प्रकाशन)
बौछार	(संकलन, सम्पादन, सहभागिता एवं प्रकाशन)
पूरब-पश्चिम	(आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह)
काव्य-वृष्टि	(संकलन, सम्पादन, सहभागिता एवं प्रकाशन)
अनुभूतियाँ	(काव्य-संग्रह)
The Galaxy Within	(A collection of English poems)
ज़ज़्बातों का सिलसिला	(काव्य-संग्रह)
हास-परिहास	(हास्य कविताएँ)
आत्म-गुंजन	(अध्यात्मिक-दार्शनिक गीत)
जीवन-निधि	(काव्य-संग्रह)
आज का पुरुष	(कहानी-संग्रह)
दर्दे-ज़ुबाँ	(नज़्म व ग़ज़ल संग्रह)
जीवन के रंग	(काव्य-संग्रह)
अनमोल हास्य क्षण	(नाटक-संग्रह, फेडरल गवर्नमेन्ट, कैनेडा द्वारा अधिकतम अनुदान से सम्मानित)

प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड
नई दिल्ली - ११०००२, भारत

Star Publishers' Distributors
55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW, England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित